गीतांजलि

(नोबल पुरस्कार से सम्मानित कृती)

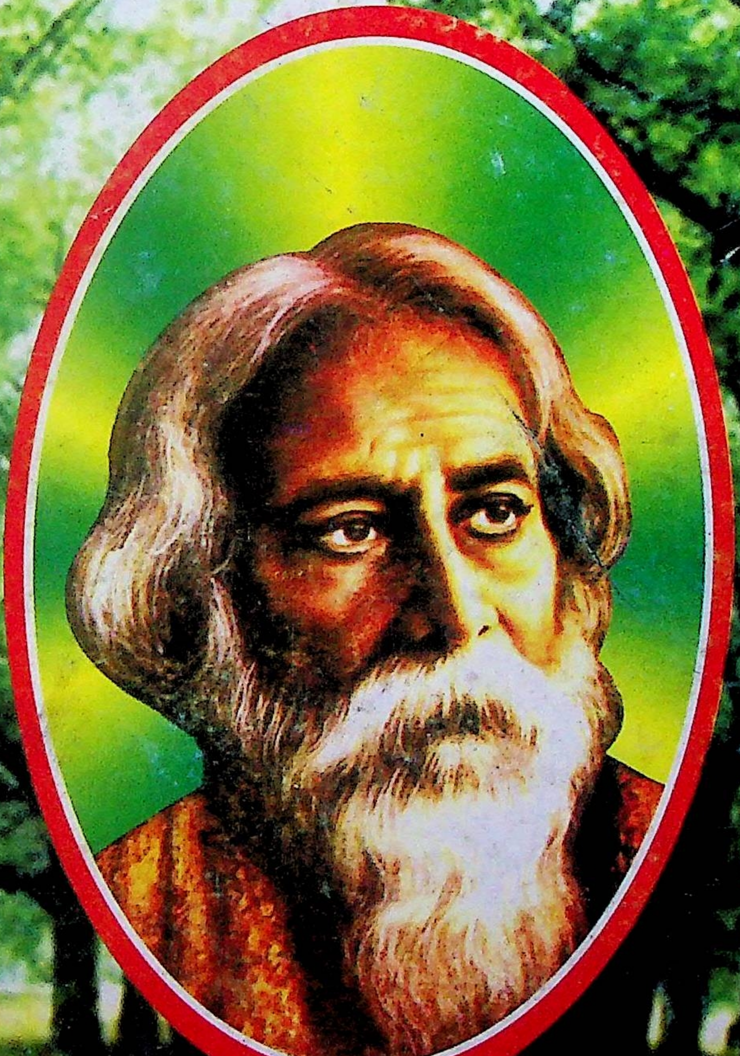

लेखक

रवीन्द्रनाथ टैगोर

Rajiv

गीतांजलि

जन्म शतवार्षिकी के अवसर पर
महाकवि की पुण्य-स्मृति में
उनकी कृति
उन्हीं को

'तोमार कीर्तिर चेये तुमि ये महत्
ताइ तव जीवनेर रथ
पश्चाते फेलिया जाय
कीर्तिरे तोमार
बारंबार।'

गीतांजलि

(नोबल पुरस्कार से सम्मानित कृती)

लेखक

रविन्द्रनाथ टैगोर

अनुगायक

हंसकुमार तिवारी

आत्मनिवेदन

हिन्दी 'गीतांजलि' को आपके हाथों में पहुंचाते बेशक देर हो गयी। जरूरत से कुछ ज्यादा ही शायद। ऐसी कुछ लाचारी हो गयी। यों पिछले दिनों जब मूल सहित इसके कुछ गीत पत्र-पत्रिकाओं में आमने-सामने छपे, जहां तहां मैंने स्वयं मूल और अनुवाद साथ-साथ सुनाये—पुस्तक रूप में जल्दी से जल्दी इन्हें छपा देने के बेसब्र तकाजे तभी से शुरू हो गये थे। लेकिन लोगों के वैसे स्नेह-आग्रह से अपने एक इच्छा हो आयी। इच्छा हो आयी कि पुस्तक छपे भी उसी ढंग से। यानी हिन्दी हरूफ में मूल भी एक तरफ हो, एक तरफ पद्यानुवाद। ऐसा संभव हो पाता, तो आपको भी ज्यादा खुशी होती, अपना श्रम भी और अधिक सार्थक होता। क्योंकि इस अनुवाद की अपनी निजस्वता का वही आईना होता। यह न केवल पद्यानुवाद है, न सिर्फ इसमें तुक, अंतस्तुक, यति-गति की ही रक्षा की कोशिश है, बल्कि छंद भी करीब-करीब वही हैं, तो इसमें अनुगामी हैं ही। नहीं तो हिन्दी में जब कुछ अनुवाद उपलब्ध हैं, तो इसमें समय-श्रम की फिजूलखर्ची का नाहक ही आग्रह क्यों होता ? लेकिन चाहा भी, कोशिश भी की, फिर भी उस इच्छा को रूप न दे पाया। और, जब देर हो ही गयी, तो सोचा, महाकवि की जन्मशतवार्षिकी पर ही यह स्मृति-अर्पण रहे।

सो यह आज आपके हाथों पहुंची। इसकी भूमिका कोई नहीं है। जो है, सामने है। कला की कोई कृति जब किसी आकृति में ढल आती है, तो दूसरे सांचे में उसे ढालना बड़ा कठिन काम होता है। मैंने यह सोचकर कठिनाई के उस कठोर मार्ग पर कदम बढ़ाया कि सलोने मुखड़े का जीवंत लावण्य न उतरता हो चाहे, परछाईं तो हूबहू दर्पण पर पड़ती है, तस्वीर तो पट पर आती है और उसे हम देखते नहीं, चाहते नहीं, दुलराते नहीं—ऐसी बात नहीं। दूरी हो तो तस्वीर की निकटता भी सांत्वना देती है, लिहाजा असंग्रहणीय तो नहीं होती। फिर धोखा भी तो हो सकता है। चेहरा न कहीं अक्स के बदले उतर आये ! खैर। यह अपनी बात नहीं। न ही अपने बस की है। यह एक विनीत प्रयास है। बस।

'गीतांजलि' को प्रकाश में लाने की मूल प्रेरणा रहे हैं मेरे अनन्य स्नेही श्री रघुनाथ प्रसाद जी खेतान और उस प्रेरणा को अन्ततः प्रकाश का अंतिम रूप दिलाने को बेबस करनेवाले हैं दूसरे बन्धु श्री शशिभूषण राय। इन दोनों के प्रति अपनी कृतज्ञता मूक है।

—हंसकुमार तिवारी

कलकत्ता : गंगादशहरा

गीतों की प्रथम पंक्ति

क्रम		पृष्ठ
1.	मेरा शीश नवा दो	13
2.	बहुत वासनाओं पर मन से	14
3.	चीन्हें किये अचीन्हे कितने	15
4.	विपदाओं से मुझे बचाओ	16
5.	विकसित करो हमारा अंतर	17
6.	प्रेम-प्राण से गंध-गान से	18
7.	तुम नव-नव रूप धरे आओ	19
8.	आज धनखेतों में धूप-छांह का	20
9.	आया है आनंद-उदधि से	21
10.	आज सजाऊंगा दुख-जल-धारा से	22
11.	हमने बांधा कास-गुच्छ	23
12.	लगी धपाधप धुले पाल में	24
13.	आये मेरे नयन मुग्धकर	25
14.	जननी, तेरे करुण चरण कल्याणी	26
15.	गूंज रही आनन्द गीति	27
16.	घन पर घिरा सघन घन	28
17.	कहां प्रकाश, कहां है अरे, उजाला	29
18.	सावन के घन गहन मोह से	30
19.	घिर आयी आसाढ़ी संध्या	31
20.	आज झड़ी की निशि में	32
21.	जानूं कौन कथा के अथ में	33
22.	गायक, कैसे जो गाते तुम गान	34
23.	ओट लिये यों छिपने से तो	35
24.	दरस तुम्हारा जो न मिले प्रभु	36
25.	अहरह विरह तुम्हारा ही	37

क्रम		पृष्ठ
26.	बेला बीत-चली	38
27.	आज भरी भादो दो की बदरी	39
28.	नाथ, तुम्हारे लिए नैन ये जागे	40
29.	उलझा है धन से, जन से	41
30.	यही, यही तो प्रेम तुम्हारा	42
31.	यहां रहूं मैं गाने को ही	43
32.	भय से मुझे उबारो	44
33.	मन को मेरे फिर इन सबने घेरा	45
34.	मेरे मिलन हेतु कब से तो	46
35.	आओ, सजल श्यामघन आओ	47
36.	साथ नहीं दे पाओगे क्या	48
37.	स्वप्न निशा का छूट गया	49
38.	पहुंचा पाहुंन कौन शरत् में	50
39.	अब तक गाते बना न	51
40.	जो खो जाता, उसे अगोरूं	52
41.	यह मैला परिधान	53
42.	पुलक जागता रह-रह तन में	54
43.	आज न ढंक रखो,	55
44.	जगती में आनन्द-यज्ञ का मिला निमन्त्रण	56
45.	जगमग ज्योति जगाते आये	57
46.	पड़ा रहूंगा आसन के नीचे	58
47.	पैठा हूं इस रूप-उदधि में	59
48.	नभतल में खिल उठा	60
49.	यहां उन्होंने अपनी गोद बिछायी	62
50.	जहां देवता विजन प्राण के	64
51.	किस प्रकाश से जला प्राण के दीप	65
52.	तुम मेरे अपने हो	66
53.	मुझे उतार धरो	67
54.	आज सौरभ विधुर समीरण में	68

क्रम		पृष्ठ
55.	आज बसंत जाग्रत द्वारे	69
56.	अपने आसन-सिंहासन से	70
57.	मेरे नाथ, मुझे अपना लो	71
58.	जीवन जब नीरस हो जाये	72
59.	अब तो कर दो मौन	73
60.	नींद मगन जब भुवन	74
61.	वह आकर बैठा था तेरे पास	75
62.	तुमने कभी नहीं सुन पायी	76
63.	मान गया मैं, मान गया मैं हार	77
64.	एक-एक कर तार पुराने	78
65.	गाते गीत तुम्हारा	79
66.	ऐसी शक्ति कहां जो ढो लूं	80
67.	तुम आज सबेरे आए थे	81
68.	तुमसे चलती थी जब मेरी क्रीड़ा	82
69.	नाव खोल दी, वह लो	83
70.	मन मेरा खो गया आज	84
71.	मेरे मौन न बोले तो क्या	85
72.	बुझ-बुझ जाता दीप	86
73.	मैं तुम्हें रख सकूं	87
74.	बजता वेणु तुम्हारा पवि में	88
75.	धोना तुम्हें पड़ेगा	89
76.	सभा शेष होने तक	90
77.	जनम-जनम की वेदना	91
78.	तुम जब कहते मुझसे, गीत सुनाओ	92
79.	मेरे मन का जिसमें सारा प्यार	93
80.	दिन रहते आए वे सब मेरे घर	94
81.	वे वसूलते बाट बीच	95
82.	खिली चांदनी रात, उनींदि प्राण	96
83.	तै था एक तरी में हम-तुम दो जन	97

क्रम		पृष्ठ
84.	खुले जगत् में, घर की संकरी ओट हटाकर	98
85.	ऐसे औ:र अकेले	99
86.	तुमने मुझे जगाया जब झकझोर	100
87.	चुन लो, मुझे वृंत से चुन लो	101
88.	मुझे प्यार तुम से है,	102
89.	मेरा प्रेम नहीं तो कायर	103
90.	अभी सह्य आघात और भी	104
91.	तुमने भला किया यह निर्दयी	105
92.	जान देवता तुम्हें, दूर रहता हूं	106
93.	हाथ बटाने उसमें मुझे न दोगे	107
94.	जहां जगत के साथ हिले तुम	108
95.	मुझे पुकारो	109
96.	लूट तुम्हारी होती जहां भुवन पर	110
97.	स्वतः सुमन जैसे विकसाते गान	111
98.	रहू सदा उस मुख का ओर निहारे	112
99.	घिर आया आसाढ़, गगन में छाया	113
100.	आज मानव में वर्षा का रूप निखरता	114
101.	मेरे देव, लबालब भर	115
102.	यही एक है साध	116
103.	मैं तुमसे अभिसार हेतु	117
104.	अपलक आंखों देख रहे	118
105.	ढोऊंगा अब नहीं आपको	119
106.	मेरे चित्त पुण्यतीरथ में	120
107.	अधमाधम दीनातिदीन जन	123
108.	अरे, अभागे देश	124
109.	धरे रहो, धीरज मत छोड़ो	126
110.	भरा हुआ है हृदय अभी तो मेरा	127
111.	अंतर्यामी, कभी गर्व से	128
112.	कौन कहे सब छोड़ चलेगा	129

क्रम		पृष्ठ
113.	नदी पार के इस आसाढ़ी प्रात मुखर को	130
114.	जिस दिन संध्या को पहुंचेगा	131
115.	करके दया, चाह कर	132
116.	चरम पूर्णता मेरे इस जीवन की	133
117.	मैं राही चिर तत्पर	134
118.	उड़ा पताका बादलभेदी रथ पर	136
119.	पूजन भजन साधनाराधन	137
120.	सीमा में, असीम, तुम अपनी	138
121.	मुझ पर ही आनंद तुम्हारा निर्भर	139
122.	नहीं तुम्हारे लिए मान का	140
123.	पहुंची जिस दिन प्रभु के घर से	141
124.	सोचा, जो होना था	142
125.	मेरे गीतों ने सब अपने	143
126.	निंदा दुख अपमान हृदय को	144
127.	जिस शिशु को राजा के बानक में	145
128.	उलझ गये आपस में इसके	146
129.	गाने जैसा बना न कोई गान	147
130.	मुझमें यहां तुम्हारी लीला होगी	148
131.	क्या जाने दुःस्वप्न कहां से आकर	149
132.	गीतों से मैं तुम्हें ढूंढ़ता	150
133.	तुम्हें खोजना खत्म न होगा	151
134.	मेरे शेष गीत में पूरी	152
135.	मुझे बांधते जब तुम आगे-पीछे	153
136.	जितने दिन तू नन्हें शिशु-सा	154
137.	नित्य सत्य होगा कब तुममें	155
138.	तुमको अपना स्वामी रहूं बनाये	156
139.	तुमने मेरा प्राण दिया इतना भर	157
140.	मानव-जन्म-त्तरी के मेरे	158
141.	मन को, अपनी काया को	159

क्रम		पृष्ठ
142.	जाने के दिन कह जाऊं मैं	160
143.	जिसे नाम से अपने ढंकते हैं हम	161
144.	मेरा नाम मिटा दोगे जिस दिन	162
145.	बाधाएं हैं, उन्हें छुड़ाना चाहूं	163
146.	कहीं मैं न जानूं	164
147.	पूजा जनम में न पूरी हुई जो	165
148.	केवल एक प्रणति में, स्वामी	166
149.	चिर दिन जो रह गया	167
150.	सहा न जाता अब तो	169
151.	पकड़ाई दूं प्रेम-करों में	170
152.	और-और जो लोग जगत में	171
153.	कब भेजोगे अपने प्रेमदूत को	172
154.	मुझसे गीत गवाये, तुमने	173
155.	जी में होता यहीं शेष है	174
156.	छिपा शेष ही में अशेष है	175
157.	डूब गया यदि दिन	176

[1]

मेरा शीश नवा दो अपनी
चरण - धूल के तल में।
देव ! डुबा दो अहंकार सब
मेरे आंसू - जल में।

अपने को गौरव देने को
अपमानित करता अपने को,
घेर स्वयं को घूम - घूम कर
मरता हूं पल - पल में।

देव ! डुबा दो अहंकार सब
मेरे आंसू - जल में।
अपने कामों में न करूं मैं
आत्म - प्रचार प्रभो;

अपनी ही इच्छा मेरे
जीवन में पूर्ण करो।
मुझको अपनी चरम शान्ति दो
प्राणों में वह परम कांति हो

आप खड़े हो मुझे ओट दे
हृदय - कमल के दल में।
देव ! डुबा दो अहंकार सब
मेरे आंसू - जल में।

●

[2]

बहुत वासनाओं पर मन से हाय, रहा मर,
तुमने बचा लिया मुझको उनसे वंचित कर।
संचित यह करुणा कठोर मेरा जीवन भर।

अनमांगे जो मुझे दिया है
जोत गगन तन प्राण हिया है
दिन-दिन मुझे बनाते हो उस
महादान के लिए योग्यतर
अति- इच्छा के संकट से
मुझको उबार कर।

कभी भूल हो जाती चलता किन्तु कभी तो
तुम्हें बनाकर लक्ष्य उसी की एक लीक धर;
निठुर ! सामने से जाते हो तुम जो हट पर।

है मालूम दया ही यह तो,
अपनाने को ठुकराते हो,
अपने मिलन योग्य कर लोगे
इस जीवन को बना पूर्णतर
इस आधी इच्छा के
संकट से उबार कर।

●

[3]

चीन्हे किये अचीन्हे कितने
घर कितने ही घर को;
किया दूर को निकट, बंधु,
अपने भाई सा पर को।

छोड़ निवास पुराना जब मैं जाता
जानें क्या हो, यही सोच घबराता,
किन्तु पुरातन तुम हो नित नूतन में
यही सत्य मैं जाता बिसर-बिसर जो।
किया दूर को निकट, बंधु,
अपने भाई- सा पर को।

जीवन और मरण में निखिल भुवन में
जब भी, जहां कहीं भी अपना लोगे,
जनम- जनम के ऐ जाने- पहचाने,
तुम्हीं मुझे सबसे परिचित कर दोगे।

तुम्हें जान लूं तो न रहे कोई पर,
मना न कोई और नहीं कोई डर—
तुम सबके सम्मिलित रूप में जागे
मुझे तुम्हारा दरस सदा प्रभुवर हो।
किया दूर को निकट, बंधु,
अपने भाई -सा पर को।

●

[4]

विपदाओं से मुझे बचाओ, यह न प्रार्थना,
विपदाओं का मुझे न होवे भय।
दुःख से दुखे हृदय को चाहे न दो सांत्वना,
दुःखों जिसमें कर पाऊं जय।

जो सहाय का जुटे न संबल
टूट न जाये पर अपना बल
क्षति जो घटे जगत् में केवल मिले वंचना,
अपने मन में मानूं किन्तु न क्षय।

मेरा त्राण करो तुम मेरी यह न प्रार्थना,
तरने का बल कर पाऊं संचय।
मेरा भार घटा कर चाहे न दो सांत्वना,
ढो पाऊं इतना तो हो निश्चय।

शीश झुकाये जब आये सुख
लूं मैं चीन्ह तुम्हारा ही मुख
निखिल धरा जिस दिन दुख निशि में करे वंचना
तुम पर करूं न मैं कोई संशय।

●

[5]

विकसित करो हमारा अंतर
अंतरतर हे !

उज्ज्वल करो, करो निर्मल, कर दो सुन्दर हे !
जाग्रत करो, करो उद्यत, निर्भय कर दो हे !
मंगल करो, करो निरलस, निःसंशय कर हे !
विकसित करो हमारा अंतर
अंतरतर हे !

युक्त करो हे सबसे मुझको, बाधामुक्त करो,
सकल कर्म में सौम्य शांतिमय अपने छंद भरो।
चरण-कमल में इस चित को दो निस्पंदित कर हे !
नंदित करो, करो प्रभु नंदित, दो नंदित करो हे !

विकसित करो हमारा अंतर
अंतरतर हे !

[6]

प्रेम- प्राण से गंध- गान से जोत-पुलक से
निखिल गगनतल भूमंडल को प्लावित करके
झरता अमल तुम्हारा अमृत- निर्झर।

दिशि- दिशि में सारी बाधाएं आज तोड़ कर
जाग रहा आनन्द अनोखा मूर्त्त रूप धर;
निविड़ सुधा से जीवन निकर उठा भर।

उस कल्याण सरस रस के मृदु मधुर परस से
शतदल-सी खिल पड़ी चेतना परम हरस से
उसका सब मधु चरण तुम्हारे धर कर।

नीरव द्युति में हिय-प्रदेश में जागी झलमल
मुक्त उषा के अरुण उदय की आभा निर्मल,
अलस नयन का हटा आवरण सत्वर।

●

[7]

तुम नव-नव रूप धरे आओ प्राणों में।
मृदु गंध-वर्ण में, आओ तुम गानों में।

आओ अंगों में पुलकित परस सरस भर,
आनन्द सुधा-सिंचन से भर उर-अंतर,
आओ दो हर्ष विमुग्ध मुंदे नैनों में।
आओ हे कांत विमल उज्ज्वलतर आओ,

आओ प्रशांत तुम हे चिर सुन्दर आओ,
आओ विधान के बहु विचित्र बानों में।
दुख में सुख में तुम आओ अंतरतर में,
जगती के दैनंदिन सब कर्म निकर में,

आओ हे सब कर्मों के अवसानों में।
तुम नव-नव रूप धरे आओ प्राणों में।

●

[8]

आज धनखेतों में धूप छांह का।
कौतुक लुकाछिपी का।
किसने नील गगन में खोली।
श्वेत मेघ की नौका।

आज भूल रहा मधु पीना भौंरा
उड़ा फिर रहा द्युति से बौरा
मेला नदी चौंर पर कैसा
यह चकवा - चकवी का।

आज नहीं घर जाऊंगा · रे
आज न जाऊंगा घर।
लूंगा लूट आज बाहर को
मैं उजाड़ कर अंबर।

फेन ज्वार-जल पर ज्यों फेनिल
उड़ता मरुत लहर पर खिलखिल
आज अकाज फूंक बस वंशी
बीतेगा यह मौका।

●

[9]

आया है आनन्द - उदधि से
ज्वार लिये तूफान
संभल बैठ सब डांड़ थाम ले
खेता चल अम्लान।

जो भी है सब बोझ उठाये
दुख की नैया पार लगाये
चलें तरंगों पर उताराये
जाएं भले ही प्राण।

आया है आनन्द -उदधि से
ज्वार लिये तूफान
कौन टोकता है रे, पीछे
कौन मना करता है;

याद दिलाता कौन डरों की
डर का हमें पता है।
कौन शाप, ग्रहदशा कौन जो
सुख के मरु में रहूं मौन हो

पकड़ पाल की डोरी सुख से
गाते करें पयान।
आया है, आनन्द -उदधि से
ज्वार लिये तूफान।

●

[10]

आज सजाऊंगा दुख- जल-
धारा से पूजा- थाल।
जननी, गूंथूंगा ग्रीवा की
मंजुल मोती- माल।

रवि- शशि जो जगमग ज्योतित ये
हार बने चरणों से लिपटे
मेरे दुख- भूषण से शोभित
होगा वक्ष विशाल।

यह धन- धान्य तुम्हारा धन
इनका क्या करना बोलो;
देना चाहो तो दो मुझको
लेना हो तो ले लो।

दुख अपने ही घर का धन तो
तुम्हीं चीन्हते खरे रतन को
दे प्रसाद क्रय करते उसको
मैं तो गर्व-निहाल।

●

[11]

हमने बांधा कास- गुच्छ
गूंथी शेफाली - माला।
नये धान की मंजरियों से
भर जाये हैं डाला।
ऐ शारदश्री आओ, अपने शुभ्र मेघ के रथ से
निजल नील नभ- पथ से
धुले सुश्यामल द्युति से झलमल
कानन से, पर्वत से
माथे मुकुट श्वेत शतदल का
जड़ा शिशिर मणिवाला।
सुमन मालती के झर
आसन बना बिछे निर्जन
कुंजों में गंगा- तट पर।
पद तल पर पर बिछा डालने को
मराल- मन तत्पर।
अपनी सोने की वीणा के
तार करो गुंजार
मृदुल मधुर झंकार
क्षणिक अश्रु- धारा में गल आये
खिल -खिल सुर-सार।
अलक ओट से जो पारसमणि
झलक झांकता झलमल
सकरुण कर से मन की वही
छुला दो ज्योति सुनिर्मल
सभी भावना बने कनक
तप हो जाये उजियाला।

●

[10]

आज सजाऊंगा दुख- जल-
धारा से पूजा- थाल।
जननी, गूंथूंगा ग्रीवा की
मंजुल मोती- माल।

रवि- शशि जो जगमग ज्योतित ये
हार बने चरणों से लिपटे
मेरे दुख- भूषण से शोभित
होगा वक्ष विशाल।

यह धन- धान्य तुम्हारा धन
इनका क्या करना बोलो;
देना चाहो तो दो मुझको
लेना हो तो ले लो।

दुख अपने ही घर का धन तो
तुम्हीं चीन्हते खरे रतन को
दे प्रसाद क्रय करते उसको
मैं तो गर्व-निहाल।

●

[11]

हमने बांधा कास- गुच्छ
गूंथी शेफाली - माला।
नये धान की मंजरियों से
भर जाये हैं डाला।
ऐ शारदश्री आओ, अपने शुभ्र मेघ के रथ से
निजल नील नभ- पथ से
धुले सुश्यामल द्युति से झलमल
कानन से, पर्वत से
माथे मुकुट श्वेत शतदल का
जड़ा शिशिर मणिवाला।
सुमन मालती के झर
आसन बना बिछे निर्जन
कुंजों में गंगा- तट पर।
पद तल पर पर बिछा डालने को
मराल- मन तत्पर।
अपनी सोने की वीणा के
तार करो गुंजार
मृदुल मधुर झंकार
क्षणिक अश्रु- धारा में गल आये
खिल -खिल सुर- सार।
अलक ओट से जो पारसमणि
झलक झांकता झलमल
सकरुण कर से मन की वही
छुला दो ज्योति सुनिर्मल
सभी भावना बने कनक
तप हो जाये उजियाला।

●

लगी धपाधप धुले पाल में
मीठी मंद बयार;
कभी न देखी, कभी न ऐसी
सधी डांड़- पतवार।

लाता कौन समंदर लांघे
किस सुदूर का धन रे;
लुटा चाहता मन रे
चाह प्राप्ति को इसी किनारे
फेंकूं सभी उतार।

झिर-झिर झरता है जल पीछे
गुरु- गुरु गरज रहा घन
छिटक छिन्न मेघों से पड़ता
मुख पर अरुण किरण -कण

खेवनहार, कौन तुम, किसके
हास- रुदन के संबल
सोच चित्त यह चंचल
कौन मंत्र गाओगे, किस लय में
यह बांध सितार।

●

[13]

आये मेरे नयन मुग्धकर।
मैंने यह क्या देखा जी भर।

हरसिंगार के आस-पास में
चुए फूल के हास-वास में
ओस नहायी घास- घास में
रक्तारुण पद धर -धर।
लुट-लुट पड़ता है वन-वन में
धूपछांह का आंचल;
वह मुख निरख न जानें कैसी
फूलों के मन हलचल
तुमको वरण करें हम आओ
मुंह का परदा नेक उठाओ
मृदु मेघांबर दूर हटाओ
दोनों हाथों सत्वर।

वनदेवी के द्वार-द्वार पर
शंख बज रहा गहरा;
उठता स्वागत- गीत तार पर
नभ-वीणा के लहरा।

बजते कहां स्वर्ण- नूपुर हैं
स्यात् कहीं मेरे ही उर में
सभी भाव, सब कर्म निकर में
शिला -निचोड़ी रस भर
आये मेरे नयन मुग्धकर।

●

[14]

जननी, तेरे करुण चरण कल्याणी
देखे मैंने आज प्रभात-किरण में;
जननी, तेरी मंजुल मनहर वाणी
भर-भर उठती चुपचुप मौन गगन में।

अखिल भुवन में माथा तुझे नवाऊं
सब जीवन-कर्मों में शीश झुकाऊं
तन-मन-धन सब आज निछावर कर दूं
भक्ति- धूप पावन पूजन- अर्चन में।

जननी, तेरे करुण चरण कल्याणी
देखे मैंने आज प्रभात-किरण में।

●

[15]

गूंज रही आनन्द- गीति
उन्मुक्त उदार भुवन भर,
कब गहरा होकर गूंजेगा
मेरे उर में वह स्वर।

वारि बयार अकास जात सब,
इनको प्यार करूंगा मैं कब,
कब ये सभा लगा बैठेंगे
रूप धरे भर अंतर।

नैन बिछाते ही कब होंगे
प्राण पुलक से प्रमुदित,
जिस होकर निकलूंगा, होगी
सब की तुष्टि, सुखद चित।

तुम हो यही सत्य किस क्षण में
सहज हो उठेगा जीवन में
तुम ही तुम कब मुखर—
हो उठोगे मेरे सर्वस पर।

[16]

घन पर घिरा सघन घन
घिरता आता है तम-भार,
मुझे अकेले क्यों बैठाये
रखा अगोरे द्वार।

काम-काज के व्यस्त दिनों में
उलझा रहता विविध जनों में
किन्तु आज तो नाथ, तुम्हारा
ही पथ रहा निहार।

तुम जो दरस नहीं दो मुझको
करो निठुर अवहेला,
कैसे कटे भला बोलो तो
यह बदली की वेला।

आंखें अपनी बिछा दूर तक
मैं उदास बैठा हूं अपलक
करते फिरते प्राण पवन में
व्याकुल हाहाकार।

●

[17]

कहां प्रकाश, कहां है अरे, उजाला।
सुलगा उसे लगा विरहानल ज्वाला।
दीया है न प्रकाश शिखा का—हाय, भाग्य में यही लिखा था
इससे तो वह मरण कहीं था आला
सुलगा उसे लगा विरहानल ज्वाला।

गाती है वेदना -दूतिका रे मन
तेरे लिए जगा करते हैं भगवन्
विजन रात के अंधकार में—तुझे बुलाते प्यार-मिलन को
रखते तेरा मान दुःख दे छन-छन।
तेरे लिए जगा करते हैं भगवन् !
गया गगन घनघोर घटाओं से भर
बादल बरस रहा है अविरल झर-झर
ऐसी त्रासद निशि में सहसा—मेरा प्राण जाग कर ऐसा
किसके लिए हुआ जाता आकुलतर
बादल बरस रहा है अविरल झर-झर

बिजली कौंध जगाती आभा क्षण को
निविड़ तिमिर से भर देती लोचन को
नहीं जानता कहां दूर पर—कोई गीत जगा गहरा स्वर
पथ पर खींच लिये जाता है मन को।
निविड़ तिमिर से भर देती लोचन को।
गरजे बादल पवन पुकारे
हो न सकेगा फिर जाना रे
गहन रात तम सघन निकष-सा काला।
सुलगा उसे लगा विरहानल ज्वाला।
कहां प्रकाश, कहां है अरे, उजाला।
सुलगा उसे लगा विरहानल ज्वाला।

●

[18]

सावन के घन गहन मोह से
चुपके पांव दबा कर,
आये तुम रजनी- से नीरव
सबकी आंख बचा कर।

आज किये है लोचन बंद प्रभात
वृथा पुकार लौट जाता है वात
किसने नंगे नील गगन का गात
कजरारे मेघों से डाला है भर।

कूजनहीन हरित कानन है
बंद पड़ा है घर- घर
हे एकाकी पथिक, कौन तुम
इस सुनसान डगर पर।

हे निःसंग मीत मेरे, प्रिय, प्यार
खुला प्रतीक्षा में इस घर का द्वार
सम्मुख से हो स्वप्न सरीखा पार
मत जाओ तुम मुझको यों ठुकरा कर।

●

[19]

घिर आयी आसाढ़ी संध्या
डूब गया दिन ढल कर।
बंधनहीन वृष्टि की धारा
झर- झर झरती गल कर।

घर के कोने बैठ विजन में,
क्या जो सोचूं अपने मन में,
भीगी हवा यूथिका- वन में,
कह क्या जाती चल कर।

आज लहर लहरायी हिय में
ढूंढे कूल न पाता
ओदे वन का फूल महक कर
मेरे प्राण रुलाता।

अंधियारी निशि की पहरें ये,
भर दूं किस सुर की लहरें ले,
कौन भूल, जो सब कुछ भूले,
प्राण आज आकुलतर।

बंधनहीन वृष्टि की धारा
झर- झर झरती गल कर।

[20]

आज झड़ी की निशि में यह अभिसार।
मन के मीत, प्राणप्रिय, मेरे प्यार।

नभ निराश-सा रोता हरदम
नींद नहीं इन नयनों में मम
द्वार खोल झांकूं मैं प्रियतम
व्याकुल बारंबार।

देख नहीं पाता कुछ बाहर, आह,
सोचूं, आखिर कहां तुम्हारी राह

दूर कौन-सी नदी पार में
गहन कौन-से वन-कछार में
अगम कौन-से अंधकार में
होते हो तुम पार।

मन के मीत, प्राणप्रिय, मेरे प्यार।

●

[21]

जानूं कौन कथा के अथ में
बहा सुजीवन-बाह अथक में,
सहसा कहां गेह में, पथ में
जी में जगा दिया है हर्षण।

कितनी बार मेघ में छिपकर
खड़े हुए ऐसा मृदु हंसकर
किरणों के रक्ताभ चरण धर
दिया भाल को मंगल परसन।

इन दो आंखों में है अंजित
लोक-लोक युग-युग से संचित
कितनी नव-नवज्योति सुरंजित
रूपहीन के अभिनव दर्शन।

किस युग-युग से कौन बताये
इन प्राणों में भर-भर लाये
सुख-दुख प्रीत गीत में छाये
अमृत के कितने रसवर्षण।

●

[22]

गायक, कैसे जो गाते तुम गान
मैं सुनता, बस सुनता मौन निदान।

भर देती उस सुर की जोत भुवन को
भर देता उस सुर का मरुत गगन को
प्रस्तर- कारा तोड़ कठिन उन्मन हो
बह आती सुर की गंगा अम्लान।

जी में होता गाऊं उसी लहर में
नहीं कंठ में पाता वह स्वर पर मैं
कहा चाहते प्राण न फुरती वाणी
रोते हैं हर बार हार अभिमानी।

किस फंदे में डाला गुणी गुमानी
चहुं दिशि मेरे स्वर का जाला तान।

●

[23]

ओट लिये यों छिपने से तो
काम नहीं चलने का
आन छिपो अंतर में, कोई
जानेगा, न कहेगा।

लुकाछिपी का खेल तुम्हारा
देश- विदेश जहां दूं फेरा
अब तो कहो बंधोगे मन से
और नहीं छलने का !

मेरा हृदय कठोर सही है
उन चरणों के योग्य नहीं है
बंधु, तुम्हारी सांस छुए क्या
प्राण नहीं गलने का !

माना, वैसी नहीं साधना
पर जो झरे तुम्हारी करुणा
पल में फूल न फूलेंगे, फल
तुरन्त नहीं फलने का !

ओट लिये यों छिपने से तो
काम नहीं चलने का।

●

[24]

दरस तुम्हारा जो न मिले प्रभु
अबकी इस जीवन में,
मैं न तुम्हें पा सका, बात यह
याद रहे पर मन में।
भूल न जाऊं, पीड़ा पाऊं, सपने और शयन में।

बैठ पैठ जगती के
जितने भी दिन बीते
ये दो मुट्ठी लिप्त रहे चाहे जितना भी धन में
फिर भी पा न सका मैं कुछ भी
याद रहे यह मन में।
भूल न जाऊं, पीड़ा पाऊं, सपने और शयन में।

जो आलस में पड़ कर
बैठ पडूं मैं पथ पर
माटी में जो सेज सजाऊं जतन किये निर्जन में
सारी राह अभी बाकी है
याद रहे यह मन में।
भूल न जाऊं, पीड़ा पाऊं, सपने और शयन में

निखरे हंसी सुघर जो
धर बांसुरी मुखर हो
जितना चाहे साज सजाऊं घर को आयोजन में
तुम्हें न उसमें बसा सका हूं
याद रहे याद मन में।
भूल न जाऊं, पीड़ा पाऊं, सपने और शयन में।

●

[25]

अहरह विरह तुम्हारा ही
राजित है भुवन – भुवन में
रूप- रूप में शोभित है
नभ सागर गिरि कानन में।

एक- एक तारे में निशि भर
खड़ा निमेषविहीन मौन धर
विरह तुम्हारा ही पल्लव पर
बजता है सावन में।

कितनी करुणा व्यथा में घर-घर
घनीभूत यह विरह घोरतर
प्रेम- वासनाओं के ऊपर
सुख - दुख कार्य- कलन में।

कर उदास यह जीवन सारा
पिघल गान-लय की बन धारा
भर उठता है विरह तुम्हारा
मेरे अंतर्मन में।

●

[26]

बेला बीत चली, छाया
उतरी धरणी पर;
चलो, चलो, पनघट से गागर
ले आयें भर।

जलधारा के कलकल स्वर से
संध्यानभ को आकुल कर के
उसी टेर में मुझे पुकार
रहा है पथ पर।
चलो, चलो, पनघट से गागर ले आयें भर।

बाट पड़ी है सूनी, कोई
चले न राही;
प्रेम- नदी लहरायी, मचला
पवन उछाही

जानें लौटूंगा कि नहीं फिर
किससे तो परिचय होगा चिर
वही अजाना बजा रहा
वीणा तरणी पर।
चलो, चलो पनघट से गागर ले आयें भर।

●

[27]

आज भरी भादों की बदरी
बरस रही है झर-झर।
थमती नहीं अकास उजाड़ी
आकुल धारा पल भर।

सबल सालवन में हुमकी दे
प्रबल पेंग भरते हैं झोंके
दौड़ रहा जल पागल होके
आंका-बांका भू पर।

जटा घटा की उड़ी आज रे, कौन नाचता तत्पर ?

उड़ा आज मन अरे, झड़ी में
पछड़ा मत्त पवन में।
हृदय-उदधि से उठकर लहरें
लुटतीं कौन चरण में।

हिय से आज कौन कोलाहल
द्वार-द्वार का टूटा अर्गल
जाग उठा अंतर में पागल
इस भादों में आकर।

कौन आज इस बुरी तरह रे, मतवाला घर-बाहर ?

●

[28]

नाथ, तुम्हारे लिए नैन ये जागे;
दरस न पाऊं
पलक बिछाऊं
वह भी अच्छा लागे।
ये नैना नित जागे।

बैठ धूलि धूसर नित द्वारे
भिखमंगा यह अंतर हारे
दया तुम्हारी मांगे।

कृपा न पाऊं
आस लगाऊं
वह भी अच्छा लागे।

आज न जानें इस दुनिया में
खुशी- खुशी कितने कामों में
सब आगे बढ़ भागे।

साथ न पाऊं
तुम्हें बुलाऊं
वह भी अच्छा लागे।

चारों ओर सुधा सरसी – सी
यह जो आकुल श्यामल धरती
रुला रही अनुरागे।

दरस न पाऊं
दुःख उठाऊं
वह भी अच्छा लागे।
ये नैना नित जागे।

●

[29]

उलझा है धन से, जन से यह जीवन;
तो भी जानो, तुम्हें चाहता है मन।

अंतर में तुम हो, हे अंतर्यामी
मुझसे मुझको अधिक जानते, स्वामी
सब सुख-दुख में भूले रहने पर भी
जानो, तुम्हें चाहता मेरा मन।

अहंकार को पल को छोड़ न पाया
माथे चढ़ा उसे ढो- ढो भरमाया
उसे कहीं तज पाता, मिलता जीवन
जान रहे तुम, तुम्हें चाहता है मन।

जानें कब मेरे जीवन का सरबस
तुम अपने जिम्मे कर लोगे बरबस
सब देकर, सब पाऊंगा मैं तुमको
तुम्हें चाहता मन ही मन मेरा मन।

●

[30]

यही, यही तो प्रेम तुम्हारा
मेरे मनहर;
पात-पात पर नाच रहा जो
यह कंचन कर।

मीठे आलस से घन यह जो
नभ में तिरता इधर-उधर को
यह जो हवा देह को मन को
अमृत से देती भर।
यही, यही तो प्रेम तुम्हारा मेरे मनहर।

प्रात प्रभा के अरुण स्रोत में
खोये मेरे नैन;
प्राणों में यह मुखर, तुम्हारी ही
प्रेमाप्लुत बैन।

यह जो झुका, तुम्हारा ही मुख
मुझ पर गड़ी आंख दो उत्सुक
मेरा हृदय हुआ सुख-उन्मुख
उन चरणों को छूकर।

●

S.P.S. Library
Srinagar

[31]

यहां रहूं मैं गाने को ही
महज तुम्हारा गान;
अपनी जगत्- सभा में देना
बस इतना ही स्थान।

यह जो भुवन तुम्हारा छाया
उसमें काम न कुछ मैं आया
केवल सुर पर ही बज पाया।
इस किंचन का प्राण।

रात विजन मंदिर में होता जब आराधन;
तब आदेश मुझे देना गाने का राजन्।

प्रात हुए जब नील गगन भर
छिड़े वीण से सोने का स्वर
तब न उपेक्षित रहूं दूर पर
इतना रखना मान।

●

[32]

भय से मुझे उबारो, मुझे उबारो।
वह मुख मोड़ इधर को नेक निहारो।

नहीं चीन्हता तुम्हें पास से
कहां देखता, कौन आस से
हृदय-विहारी, मन-निवास से
हंस हिय हेर दुलारो।
बात करो, कुछ बोलो मुझसे
नेह परस से परसो;
अपना दांया हाथ बढ़ा कर
मुझे पकड़ लो, हरसो।

जो बूझूं सो भूल बुझाये
क्या खोजूं सो समझ न आये
झूठी हंसी और रोना ये
आओ, भूल सुधारो।

●

[33]

मन को मेरे फिर इन सबने घेरा।
फिर आंखों में घिरने लगा अंधेरा।

लगा विविध बातों का मेला जुड़ने
कहां-कहां तो लगा चित्त यह उड़ने
दाह लगा फिर धीरे-धीरे बढ़ने
पड़ा चरण को फिर खोने का फेरा।

नीरव वाणी मेरे अंतस्तल में
डूब न जाये जग के कोलाहल में

सबकें बीच रहो तुम मुझको छाये
अपने में मेरा जीवन अपनाये
मेरे चेतन पर निशिदिन फैलाये
ज्योतिर्मय त्रिभुवन ज्यों खिला सबेरा।

●

[34]

मेरे मिलन हेतु कब से तो
आते हो तुम प्यार।
कहां छिपा कर रखें तुमको।
रवि- शशि ये लाचार।

कितने युग के सांझ -सबेरे
ध्वनित हो रहे चरण तुम्हारे
चुपके दूत हृदय में आ रे।
मुझको गया पुकार।

पथिक, आज मेरे अंतर का
कोना -कोना भर कर
रह- रह कांप -कांप उठता है
पुलक पात- सा थर- थर

मानो हुआ आज वह अवसर
जो था काम, चुका वह आखिर
सुरभि तुम्हारी मृदु मल-मलकर
आती देव, बयार।

●

[35]

आओ, सजल श्यामघन आओ
रिमझिम झड़ी लगाओ।
अपना श्यामल स्नेह विपुल ले
इस जीवन में छाओ।

आओ शिखर चूम भूधर के
छाया से वन-वन को भर के
आओ गहरे गर्जन स्वर से
अंबर में छा जाओ।

व्यथित हो उठे गहन नीप-वन
पुलकाकुल फूलों से;
छलक-छलक आये कल-रोदन
सरिता के कूलों से।

आओ हे हिय भरनेवाले
जलन प्यास की हरनेवाले
नयन सुशीतल करनेवाले
हिय में समुद समाओ।

●

[36]

साथ नहीं दे पाओगे क्या बोलो तो इस छंद में,
गिरने के तिरने के फिरने के ही इस आनन्द में।

कान बिछाये सुनते भी हो
गुंजित नभ की दिशा-दिशा जो
मरण-वीण पर बजता क्या तो
सूरज तारे चंद में।
ज्वाला जला सतत जलते
जाने के ही आनन्द में।

पागल करनेवाली धुन पर
कहां जा रहा कहे कौन पर
नहीं देखता पीछे मुड़कर
रहता बंधा न बंध में।
लुटने के, रटने के, चलने
के ही इस आनन्द में।
उसी खुशी के चरण बिछाये
मुग्ध छहो ऋतु नाचे गाये
भू पर एक बाढ़ बह आये
वर्ण- गीत में, गंध में।
तजने के तरने के मरने
के ही इस आनन्द में।

●

[37]

स्वप्न निशा का छूट गया, रे छूट गया।
बंधन सारा टूट गया, रे टूट गया।

नहीं रहा कुछ ओट प्राण पर
निकला खुले जगत् में बाहर
हिय-शतदल का एक-एक दल
फूट गया रे, फूट गया।

मेरा द्वार तोड़ कर आखिर
खुद जो खड़े हुए तुम आ थिर
छलक आंसुओं में उर पद पर
कूट गया सिर, कूट गया

प्रातर्प्रभा बुलाती नभ से
मुझे बढ़ा कर हाथ किरण के।
टूटी कारा पर जय- जय-रव
उठ कर मेरा लोट गया।

●

[38]

पहुंचा पाहुंन कौन शरत् में
आज हृदय के द्वारे।
गा आनन्दगान मेरे मन
गा रे मंगलचार रे।

नीले नभ की मौन कथायें
ओस भिंजी जो व्याकुलतायें
तार-तार पर उठे तुम्हारी
वीणा के झंकार रे।

हेमल गीतों में खेतों के
सम स्वर से लय-तान मिला दे
बह जाने दे सुर को सरि की
धारा के मझधार रे।

आया आज अतिथि जो द्वारे
गाढ़े सुख से उसे निहारे
साथ उसी के हो जा बाहर
तू भी खोल किवार रे।

●

[39]

अब तक गाते बना न गाने को आया जो गान,
स्वर ही रहा साधता केवल गाने का अरमान।

नहीं जगा वह सुर, वाणी को
शब्द नहीं वह मिलता,
प्राणों में ही घुमड़ रही है
गानों की व्याकुलता।
फूला नहीं फूल वह, केवल बही हवा ही आन।

नहीं देख पाया मुख उसका
सुनी न उसकी वाणी,
केवल पल-पल सुनता हूं मैं
वह पगध्वनि पहचानी।
आता-जाता है वह घर के सम्मुख से अनजान।

बीत गया सारा दिन, आसन
उसके लिए बिछाते,
दीप जलाया नहीं जा सका
कैसे बने बुलाते।
आशा लिए मिलन की बैठा मिला न वह छविमान।

●

[40]

जो खो जाता, उसे अगोरूं
अब कितना बेकार;
जगते बनता रात न सोचे
इतना सोच अपार।

क्या तो रजनी क्या तो वासर
बैठा हूं मैं बंद किये घर
आनेवाले को शंका से
खेद रहा हर बार।

इसीलिए आना न किसी का
हो पाता मेरे घर,
पुलक भरा यह भुवन तुम्हारा
खेला करता बाहर।

तुम भी स्यात् नहीं पथ पाते
आकर लौट- लौट हो जाते
रखना चाहूं जिसे—धूल में
वह भी एकाकार।

●

[41]

यह मैला परिधान त्यागना
ही होगा इस बार।
अपने मलिन अहं का भार।

दिन के कामों में रज-धूसर
दाग बहुत लग आये उस पर
ऐसा तपा हुआ है, उफ़् ओ,
पल को सहना भार।

अब तो काम सभी चुक आये
दिन का है अवसान।
उनके आने की वेला है
आशा – पुलकित प्राण।

तो अब स्नान किये आ झटपट
सजना होगा पहन प्रेम -पट
तोड़ गूंथना है संध्या-
वन के फूलों का हार।

●

पुलक जागता रह-रह तन में
नैनों में मद घोर;
किसने हिय में रंगी हुई
राखी की बांधी डोर।

आज यहां नीले नभ-तल में
जल-थल में फूलों में फल में
बिछा दिया मेरा मन कैसे
हे मेरे चितचोर !

हुआ आज मेरा यह कैसा
खेल तुम्हारे साथ;
क्या कुछ पाया, नहीं ढूंढ़
पाता मन में वह बात।

क्या तो ले आनन्द बहाना
चाह रहा आंसू में रोना
आज मधुर होकर वियोग ने
मन को किया विभोर।

●

[43]

आज न ढंक रखो, दो अपना
दायां हाथ पसार;
मैं आया हूं तुमको राखी
पहनाने को प्यार।

जो यह राखी तुम्हें पिन्हाऊं
सब से ही मैं खुद बंध जाऊं
जो हैं जहां, न कोई भी
छूटेंगे किसी प्रकार।

भेद नहीं कोई रह जाये
आज आप में, पर में,
देख सकूं मैं तुम्हें एक ही
क्या बाहर, क्या घर में।

तुम से यह जो बिछुड़ विलग हो
मारा फिरता हूं मैं रो- रो
यह विच्छेद मिटे पल को, सो
तुमको रहा पुकार।

●

जगती में आनन्द-यज्ञ का मिला निमंत्रण।
धन्य हुआ यह, धन्य हुआ यह मानव-जीवन।

मेरे नैन रूप के पुर में
साध मिटाते फिरते भरमे
मेरी श्रुतियां गहरे सुर में
हैं आनन्द — मगन।

मैं बांसुरी बजाऊं, मुझको
दिया यज्ञ में भार।
गीतों में गूंथता फिरूं मैं
हंसी- रुदन का हार।

आया अब वह समय कहो क्या ?
तुम्हें सभा में देखूं मैं जा
जय- जयकार किये जाऊं मैं,
यही निवेदन।

●

[45]

जगमग ज्योति जगाते आये
तुम प्रकाश के प्राण,
मेरी आंखों का अंधियारा
सहसा अंतर्धान।

यह सारा अंबर अवनीतल
हास-लास से टलमल छल छल
जिधर उठाता आंख उधर ही
सब सुन्दर छविमान।

किरण तुम्हारी तरु-तरु पर
पत्तों में भरती प्राण
और प्रकाश जगाता खग के
नीड़- नीड़ में गान।

बड़े प्यार से ज्योति तुम्हारी
मेरे तन पर आकर उतरी
सहला रही हृदय को उसकी
विमल हथेली आन।

●

[46]

पड़ा रहूंगा आसन के नीचे माटी के ऊपर;
लोट तुम्हारे चरणों की रज में होऊंगा धूसर।

दूर दूर रखते हो मुझको देकर मान वृथा क्यों
जीवन भर ही भुला न देना मेरे नाथ, मुझे यों

अपमानित कर खींच मंगाओ अपने उन चरणों पर।
लोट तुम्हारे चरणों की रज में होऊंगा धूसर।

मैं हूंगा तुम तक जानेवालों के दल के पीछे
मुझे स्थान देना हे स्वामी, सब से नीचे, नीचे

कितने तो प्रसाद पाने को आते हैं घबराये
मैं न तनिक भी मांगूंगा, देखूंगा आंख बिछाये।

सब के बाद बचेगा जो भी, ले लूंगा हंस-हंस कर
पड़ा रहूंगा आसन के नीचे माटी के ऊपर।

पैठा हूं इस रूप -उदधि में
कुछ अरूप धन की आशा कर;
घाट -घाट मारा न फिरूंगा
ले कर अपनी नौका जर्जर।

अबकी तो वह अवसर आये
लहरों से लड़ना चुक जाये
डूब अमी की अगम गोद में
अमर हो रहूंगा मैं मर कर।

सुना न जो जाता कानों से
नित्य जहां बजता वह गाना;
उसी अतल की भरी सभा में
ले जाऊंगा मन की वीणा।

बांध तार को चरम तान में
उनको रोकर शेष गान में
नीरव जो हैं, उनके चरणों
दूंगा यह नीरव वीणा धर।

[48]

नभतल में खिल उठा ज्योति का
शतदल झलमल
एक एक कर मृदुल पांखुरी
दिशा - दिशा में बिखरी निखरी
आच्छादित हो गया तिमिर का
घन काजल जल।

कनक कोश में उसके अंदर
बैठा हूं मैं पुलकित अंतर
और घेर कर मुझे फैलता
द्युति का शतदल।

लहरें जगा गगन में चंचल
हवा रही चल।
गूंज उठे हर और गान हैं
नाच उठे हर ओर प्राण हैं
गगन भरा मृदु स्पर्श लग रहा
तन को पल-पल।

डुबकी लगा प्राण- सागर में
रहा प्राण से छाती भर मैं
और घेर कर मुझको चंचल
पवन रहा चल।

अंक दिया माटी ने दस दिशि
फैला आंचल।
जहां- जहां जो- जो है प्राणी

बुला- बुला सब को कल्याणी
सब के हाथ -पात में देती
बांट अन्न- जल।

गंध गान से मन परिपूरित
बैठा हूं मैं हर्ष मगन चित
मुझे घेर गोदी में, भू का
फैला आंचल।

हे आलोक, नमन लो, मेर
मेटे सब अपराध।

लाकर इस ललाट पर जड़ दो।
प्रभु का आशीर्वाद।

हे वातास, नमन लो, मेरा
मेटे सब अवसाद।

लाकर फेरो अंग- अंग में
प्रभु का आशीर्वाद।

हे मृत्तिका, नमन लो मेरी,
पूरी हो सब साध।

लाओ और फलाओ घर-घर
प्रभु का आशीर्वाद।

●

[49]

यहां उन्होंने अपनी गोद
बिछायी हम सब के घर।
आसन उनका लगा जतन से
दो मनचाहा सुंदर।
धूल बुहार फेंक दो सारी
पुलकाकुल गा गुनगुन।
सब कूड़ा-कतवार हटा दो।
एक - एक कर चुन -चुन।
पानी छिड़क फूल पूजा के
रखो साजी भर कर।
आसन उनका लगा जतन से
दो मनचाहा सुंदर।

आठों पहर निवास यहीं
उनका है हम सब के घर।
प्रात प्रकाश उंडेल उन्हीं की
हंसी बरसता झर - झर।
जाग सवेरे जो देखें हम
अपनी आंख पसारे।
देख रहे वे हमें खुशी से
पल को पलक न मारें।
उसी खुशी की जोत जगे
सारा घर हुआ उजागर।
प्रात प्रकाश उंडेल उन्हीं की
हंसी बरसता झर- झर।

यहां अकेले बैठे रहते
हैं वे हम सब के घर
जब हम दैनंदिन कामों में
कहीं निकलते बाहर।
निकल द्वार तक हमें बढ़ा
जाते वे पथ में आगे।
गाते हुए खुशी मन से हम
चल देते हैं आगे।
सांझ हुए घर आते जब
कामों से छुट्टी पाकर।
देखें तो एकाकी बैठे
हैं वे हम सब के घर।

जाग बिताते रात यहां वे
बैठे हम सब के घर;
जब बेखबर पड़े रहते हैं
हम अपनी शैया पर।
उनकी छिपी जोत को जग में
देख न कोई पाये।
आंचल ओट दिये रहते हैं
सारी रात जलाये।
नींद लगे सपने कितने ही
आते- जाते सुन्दर।
और अंधेरे में बैठे वे
हंसते हम सब के घर।

●

[50]

जहां देवता विजन प्राण के जाग रहे एकाकी;
भक्त, खोल दो द्वार वहां का लूं मैं उनकी झांकी।

किसे ढूंढ़ता फिरता दिनभर
भटका- भटका बाहर -बाहर
सीख नहीं पाया हूं मैं तो
आरती ही सन्ध्या की।

अपना जीवन- दीप बाल, ले
जीवन- ज्योति तुम्हारी;
आज सजाऊंगा निर्जन में
अपना थाल पुजारी।

जहां निखिल की सजग साधना
पूजालोक रही कर रचना
वहां धरूंगा एक ज्योति की
रेखा मैं भी बांकी।

●

[51]

किस प्रकाश से जला प्राण के दीप
धरा में आते हो तुम !
साधक, प्रेमिक, पागल !
जग में आते हो तुम !

यह अथाह संसार
चोट दुःख की खा प्राणों में वीणा की झंकार।
घोर विपद के बीच
किस मां का मुखहास निरख मुस्काते हो तुम !

क्या जानें वह कौन
जिसे खोजते अपने सुख में आग लगा तुम मौन।
कौन जार–बेजार
तुम्हें रुलाता जिसे प्यार से अपनाते हो तुम !

तुम्हें सोच कुछ नहीं
है वह कौन तुम्हारा साथी, सोच रहा हूं यही।
सदा मरण को भूल
किस अनंत जीवन-निधि में तिरते जाते हो तुम !

●

[52]

तुम मेरे अपने हो, रहते हो प्रिय मेरे पास,
आज बात यह कह लेने दो, कह लेने दो।
तुममें मेरे जीवन की सारी खुशियों का वास
आज बात यह कह लेने दो, कह लेने दो।

भर दो कंठ सुधामय सुर से
वाणी का वरदान मधुर दे।
तुम प्रियतम हो, कहने दो यह, कह लेने दो।

यह धरती आकाश निखिल यह
तुम से प्राणवंत है अहरह
हृदय खोल कर कह लेने दो, कह लेने दो।

दुखिया जान पास हो आते
लघु हूं, इसीलिए अपनाते
छोटे मुंह यह कह लेने दो, कह लेने दो।

●

[53]

मुझे उतार धरो अपने
चरणों के तल में;
हृदय गला दो, जीवन धो दो,
आंसू - जल में।

एकाकी हूं, अहंकार के
उच्च अचल पर;
तोड़ गिराओ प्रस्तर आसन
रज में पल में।
मुझे उतार धरो अपने
चरणों के तल में।

क्या है जिस पर गर्व
व्यर्थ के इस जीवन पर
भरे सदन में बिना तुम्हारे
सूना अंतर
डूब गये मेरे दिन के सब
कर्म अतल में;

विफल न हो संध्या की पूजा
भी प्रभु फल में।
मुझे उतार धरो अपने
चरणों के तल में।

●

आज सौरभ विधुर समीरण में
किसके हित भटकूं वन-वन में।

विक्षुब्ध नील नभ के आंगन
गुंजित यह क्या चंचल क्रंदन
बजता दिगंत- संगीत करुण
मेरे कारज में, चिंतन में
इस सौरभ विधुर समीरण में।
किसको खोजूं हिय में, मन में।

रे, जानें क्या नन्दन रागे
यह, सुख उत्सुक यौवन जागे
मर्मर छंदों में कोयल के
महमह में आम्र मुकुल दल के
शशि-कर अमृत सिंचित अंबर
के अश्रु सरस हर्षोज्ज्वल में।

पुलकित किसका पा परसन मैं ?
इस सौरभ विधुर समीरण में।

●

[55]

आज वसंत जाग्रत द्वारे
अवगुंठित कुंठित जीवन से उसकी
मत हंसी उड़ाना रे।

आज खोलो हृदय दल खोलो
आज अपना विराना भूलो
इस गीत गुंजरित नभ में
निज सौरभ को लहरा लो।
अपने को भूल भुवन में
दो शोभा सतत बिखेरे।

अति निविड़ वेदना वन की
पल्लव -पल्लव में बजती
पथ हेर गगन में किसका
व्याकुल वसुंधरा सजती।
दक्खिनी हवा लगती आ
घर-घर वह मांग रही क्या
यह सौरभ- विह्वल रजनी
किसके चरणों जगती जा।
ऐ सुंदर, वल्लभ, प्रियतम,
ये आह्वान किसे तुम्हारे ?

●

[56]

अपने आसन सिंहासन से
नीचे उतर पड़े तुम ;
मेरे सूने घर के द्वारे
आकर हुए खड़े तुम।

बैठ अकेले गुनगुन स्वर में
गीत गा रहा था मैं,
वह सुर बजा तुम्हारे कानों
खिंचकर उतर पड़े तुम।
मेरे सूने घर के द्वारे
आकर हुए खड़े तुम।

कितने गान, गुनीजन कितने
वहां सभा में जानें ;
बजा प्रेम में आज अचानक
निगुनी का स्वर रुमझुम।
विश्वतान में करुण एक लय
और जुड़ गयी जैसे
वरणमालिका लिये हाथ में
आकर पास अड़े तुम।
मेरे सूने घर के द्वारे
आकर हुए खड़े तुम।

●

[57]

मेरे नाथ, मुझे अपना लो
अपना लो इस बार।
अबकी मत लौटो, बस जाओ,
उर पर कर अधिकार।

बिना तुम्हारे बीते दिन जो
फिर से नहीं मांगता उनको
मिलें खाक में वे सब,
जगूं तुम्हारी जगमग द्युति में
जीवन सतत पसार।

क्या धुन, कौन बात पर जानें
जहां - तहां भटका अनजाने
घाट- बाट में कितने।
अब वह मुख रख पास हृदय के
अपनी कहो पुकार।

कितने दाग दगा चालाकी
अब भी पड़े हुए हैं बाकी
इस कसूर पर लौटा मत दो।
उन्हें बना दो छार।

●

जीवन जब नीरस हो जाए
दया - धार बन आना ;
जब माधुरी सभी खो जाए
गीतामृत बन आना ।

जिस दिन होकर कर्म प्रबलतर
ढंक ले चारों ओर गरज कर
हे नीरव प्रभु, हिय- प्रदेश में
शांत चरण धर आना ।

अपने को जब बना कृपण मन
पड़ा किनारे रहे अकिंचन
हे उदार प्रभु, द्वार खोल—
नृप- समारोह से आना ।

जब वासना विपुल रज डाले
अंध अबुझ को बना भुला ले
हे पवित्र तुम, हे अनिद्र तुम
रुद्र वेश में आना

●

[59]

अब तो कर दो मौन,
मुखर अपने इस कवि को।
दीन हृदय - वंशी उसकी
खुद गहरे फूंको ।

ले निशीथ निशि का गहरा स्वर
तान बांसुरी में दो वह भर
जिसने कर रखा अवाक्
ग्रहगण को, शशि को ।

जो कुछ भी बिखरा है मेरा
जीवन और मरण में
वह सब कुछ गीतों के
कर्षण से जा मिले चरण में ।

अपने शब्दों का सब संचय
एक निमिष में हो जाए लय।
सुनूं अगम तम में एकाकी
वंशी- ध्वनि की ।

[60]

नींद मगन जब भुवन गगन में
घिरा घोर तम - भार,
कौन छेंड़ता तब ऐसे, मेरी
वीणा के तार ।

चुन ली चुपके नींद नयन से
उठ-उठ बैठूं विकल शयन से
मिलता दरस न उसका रहता
अनिमिष आंख पसार ।

भर आये आकंठ गुननगुन
गुंजन से ये प्राण ।
नहीं ज्ञात किस विपुल राग की
है यह आकुल तान ।

किस नीरव वेदन से जानें
उर के आंसू रोक न मानें
आकुल हैं ये किसे पिन्हाने
को अपना गलहार ।

●

वह आकर बैठा था तेरे पास
तब भी नहीं जगी ।
अरी अरी हतभागिन ऐसी कौन
तुझको नींद लगी !

नीरव निशि के गहन प्रहर में
आया था वीणा ले कर मैं
जगा गया रागिनी स्वप्न में गूढ़
रस में पगी - पगी ।

जग कर देखा, उससे,
मतवाला दक्षिणी समीर,
सौरभ से अंधियारे का
आंचल हो रहा अधीर ।

मेरी रात व्यर्थ क्यों जाती
पाकर पास नहीं फिर पाती
परस सुमन माला की उसकी क्यों न
मेरे हृदय लगी !

●

[62]

तुमने कभी नहीं सुन पायी क्या उनकी पदचाप,
वही, वही तो आते हैं वे, आते हैं चुपचाप।
युग- युग पल- छिन क्या दिन क्या तो रात
वें जो आते हैं, आते हैं, आते हैं चुपचाप !

जब भी गीत यहां जो गाए
पागल- सा अपने मन भाए
गूंजा किया सभी में उनके
स्वागत का सुर आप।

जानें कितने फागुन के दिन वन के पथ से
वे जो आते हैं, आते हैं, आते हैं चुपचाप।
सावन के अंधियारे में मेघों के रथ से
वे जो आते हैं, आते हैं, आते हैं चुपचाप।

बाद दुःखों के दुःख चरम में
चरण उन्हीं के बजे मरम में
परस सुखों में कब पारस की
छुला मिटाते ताप ।

वे तो आते हैं, आते हैं, आते हैं चुपचाप।

●

[63]

मान गया मैं, मान गया मैं हार।
तुम्हें जभी ठुकराया
अपने ऊपर किया प्रहार।

मेरे चित्त- गगन से तुमको
ढंक रखना चाहे कोई जो
तुम्हें नहीं सहता मैंने,
यह जाना बारंबार ।

लगा छांह - सा पीछे - पीछे
चलता पिछला जीवन ।
माया - मुरली टेर बुलाता
मुझे व्यर्थ ही छन - छन ।

उससे टूट चुका सब नाता
पड़ा तुम्हारे हाथों में आ
जीवन का सर्वस्व बटोरे
ले आया हूं द्वार ।

●

[64]

एक - एक कर तार पुराने
फेंको सभी उतार ;
नये सिरे से बांधी आज सितार।

उजड़ गया लो दिन का मेला
सभा जुड़ेगी संध्या- वेला
वह आता होगा, जो
छोड़ेगा अंतिम झंकार ।

अपने द्वार खोल दो घुपघुप
तम से घिरे गगन में।
नीरवता सातों लोकों की
आ जाये आंगन में।

अब तक यहां गीत जो गाये
अंत आज उनका हो जाये,
यह जो साज, तुम्हारा है यह,
दो यह बात बिसार ।

●

[65]

गाते गीत तुम्हारा जानें कब निकला मैं पथ पर,
आज नहीं, उसके दिन बीते, बीते बहुत-बहुत दिन।
भूल गया हूं कब से तुम्हें चाहता आता अंतर,
नहीं आज, उसके दिन बीते, बीत गये दिन अनगिन।

जैसे फूट निकलता निर्झर
किसे चाहता नहीं पता पर
वैसे ही बहता आया मैं
जीवन - धारा धर कर।
आज नहीं, उसके दिन बीते, बीते बहुत - बहुत दिन।

जानें किस किस नाम पुकारा
आंका कितना चित्र तुम्हारा
पता नहीं कुछ, चला चल रहा
किन खुशियों में भर कर।
आज नहीं, उसके दिन बीते, बीते बहुत- बहुत दिन।

जैसे कुसुम किरण को जागे
रात, बिना जाने अनुरागे
आशा लिये तुम्हारी वैसे
मोहित हृदय निरंतर।
आज नहीं, उसके दिन बीते, बीते बहुत - बहुत दिन।

●

[66]

ऐसी शक्ति कहां जो ढो लूं
अमित तुम्हारा प्यार,
इसीलिए दुनिया में अपने-
मेरे बीच अपार
देव, दयापूर्वक ही तुमने
रखा है व्यवधान,
सुख के दुख के जाल घनेरे धन जन वैभव मान।
आड़ - ओट से पलपल जिसकी
दिखलाते हो झांकी
सघन श्याम घन बीच सूर्य की रश्मि-रेख-सी बांकी।
ढोने का बल देते जिसको
अमित प्यार का भार,
उसके जीवन से सब पर्दा लेते तुरत उतार।
घर की छाया तब न छोड़ते
धन सब लेते छीन,
बना छोड़ते उसे भिखारी पथ का संबलहीन।
फिर न उसे होता लज्जा भय
मान और अपमान,
मात्र तुम्हीं बन जाते सर्वस जग में एक निदान।
एक तुम्हीं जिसकी आंखों का
सपना, दिन का ध्यान,
जो तुमसे ही रखता परिपूरित कर अपने प्राण।
सीमा कहां लोभ की उसके
जिसे मिला वह भाग,
तुम्हें बसा लेने को हिय में देता सर्वस त्याग।

●

[67]

तुम आज सबेरे आये थे हे सुन्दर !
नव पारिजात अरुणाभ हाथ में लेकर।

निद्रित नगरी थी, पथिक नहीं था पथ पर,
तुम चले गये अपने सोने के रथ पर,
टुक रुक मेरे वातायन में झांका था
अपनी करुणा की दृष्टि डाल कर पलभर।
तुम आज सबेरे आये थे हे सुन्दर।

किस मधुर गंध से स्वप्न सने थे महमह
कांपा किन खुशियों में घर का तम रह-रह
वह धूलि विलुंठित मेरी नीरव वीणा
बोली थी खाकर कौन अनाहत ठोकर !

कितनी ही बार विचारा, अब उठ जागूं
आलस तज पथ पर निकलूं, पीछे भागूं
जागा जब तक मैं हाय, जा चुके थे तुम
अब भेंट न शायद हो पाये जीवन भर।
तुम आज सबेरे आये थे हे सुन्दर।

●

[68]

तुमसे चलती थी जब मेरी क्रीड़ा
पता किसे था, तुम क्या
त्रास नहीं था, नहीं लाज की पीड़ा
जीवन चंचल बहता।

सुबह पुकारा जाने कितना तुमने
जैसे मेरे सखा निकट के अपने
मारा फिरा तुम्हारे साथ न जाने
कितने वन - वन भटका।

उस दिन गाते थे तुम जो सब गाने
अर्थ न जानें क्या था
मेरे प्राण साथ गाएं अनजाने
हृदय नाचता रहता।

सहसा खेल थमा देखूं कैसी छवि
स्तब्ध पड़ा आकाश, मौन है शशि- रवि
चरण तुम्हारे अपने नयन झुकाये
सारा भुवन खड़ा सा।

●

[69]

नाव खोल दी, वह लो।
बोझ तुम्हारा कौन उठाये बोलो।

जाना है जब तुम्हें सामने
पीछे को पीछे दो रहने
ढोने चले उसे, एकाकी
तट पर छूट गये जो !

उठा- उठा कर बोझा घर का
जमा किया तुमने तट पर ला
बांरबार इसी से तुमको
पड़ा लौटना, भूल गये तो !

बुला बुला फिर से नाविक को
जाय बोझ तो वह जाने दो।
अपने जीवन को उजाड़ कर
उनके चरण- मूल में सौंपो।

●

मन मेरा खो गया
मेघमाला में आज अजाने,
बरबस खिंचा चला जाता है
कहां, किधर को जाने।

बिजली वीणा के तारों पर
करती है आघात निरन्तर
बजता वज्र हिये में, छिड़ते
जानें कौन तराने।

ढेर - ढेर गुच्छों में बिखरी
निविड़ नीलिमा की अंधियारी
लिपट गयी अंगों से, प्राणों-
में छिटकी मनमाने।

नृत्य निरत यह पवन मतंगी
बन बैठा है साथी -संगी
अट्टहास हंस उड़ा जा रहा
बरजे नेक न माने।

●

[71]

मेरे मौन न बोले तो क्या
हुआ, न बोले बात।
मैं नीरवता ही छाती भर
ढोऊंगा दिन - रात।

पड़ा रहूंगा मैं मन मारे
रहती जैसे स्तब्ध निशा रे
नवी धीरता से अपलक
वाले मृदु तारक -पांत।

आयेगा, प्रभात आयेगा
होगा दूर अंधेरा।
आसमान फटकर बरसेगी
तब स्वर्णिम स्वरधारा।

मेरे विहग-नीड़ में तब क्या
गूंजेगी स्वर में तव भाषा
मेरी वन - वल्लरी खिलायेगी
न कुसुम अवदात ?

बुझ - बुझ जाता दीप, हाय,
मैं जला - जला कर हारा।
अगम तिमिर में ही जीवन के
आसन रहा तुम्हारा।

यह जा लता, शुष्क है उसका मूल
केवल लगती कली, न खिलते फूल
भेंट व्यथा की इसीलिए
सेवा का एक सहारा।

पूजा का है नेक न गौरव
पुण्य विभव से हीन।
पहुंचा नाथ, पुजारी पहने
वसन लाज का दीन।

मेरे उत्सव में पहुंचा कोई न
सजा न घर, मंगल बांसुरी बजी न
अपने टूटे मंदिर में
रो - रोकर तुम्हें पुकारा।

[73]

मैं तुम्हें रख सकूं सबकी
नजर बचाकर;
अपने घर ऐसा भला
कहां पूजा - घर ?

जो तुम मेरे दिवस, रात में
सब अपनों के संग- साथ में
मिलो, तुम्हें रखूं अपने
सिर आंखों पर।

मान तुम्हें दे सकूं न वैसा
हूं मानी मैं,
पूजूं तुम्हें न स्वामी वह
आयोजन ही है।

तुमसे सच्चा प्यार अगर हो
वंशी आप बजेगी फिर तो
फूल उठेंगे फूल आप ही
उपवन भर।

[74]

बजता वेणु तुम्हारा पवि में
भला सहज वह गान !
उस निर्घोष में जगा सकूं
अपने को, दो वह कान।

नहीं सहज ही अब भूलूंगा
मन को मतवाला कर लूंगा
उसी प्राण से, ढंका मृत्यु में
अंतहीन जो प्राण।

वह तूफान खुशी से झेले
मन- वीणा के तार ;
जिससे नचा रहे सातों निधि
दस दिशि को झंकार।

इस विराम से अलग खींच कर
उस अथाह में दो मुझको धर
जहां हृदय में संघर्षों के
रहती शांति महान्।

धोना तुम्हें पड़ेगा
करुणा से यह जीवन;
कैसे इसके बिना चरण
मैं छुऊं अकिंचन।

पूजा की डाली जब लाता
मन का मैल उतर सब आता
नहीं इसी से चरणों में
रख सका प्राण- मन।

व्यथा आज तक तो कोई भी
नहीं रही थी।
अंग-अंग में अमिट मलिनता
लगी हुई थी।

किन्तु आज उस विमल गोद को
बेकल जो मरता है रो-रो
मत दो उसे धूल पर अब तो
सोने उन्मन।

●

[76]

सभा शेष होने तक क्या
गा लूंगा अंतिम गान ?
रुंधा कंठ, मैं स्यात् रहूं
मुख तकता मौन निदान !

रही तान जो आते-आते
वह रागिनी बनेगी गाते ?
सांध्य- गगन में प्रेम -व्यथा
तानेगी कनक - वितान ?

अब तक रहा साधता जो सुर
निशदिन अपने मन में,
वह साधना भाग्य से पूरी
हो जो इस जीवन में।

चरम लक्ष्य जीवन-वाणी का
मानस-रस का शरत् पद्म पा
दूंगा बहा विश्व-लय-सरि से
सागर को अनजान।

●

[77]

जनम - जनम की वेदना।
चिर जीवन की साधना।

आग तुम्हारी उठे लहक वह ?
दया दिखाना मत दुर्बल कह
जो भी ताप सहा चाहूं सब
जले, छार हो वासना।

जो पुकार अव्यर्थ, पुकारो उससे
देर व्यर्थ की क्यों अब ?
छाती से जकड़े जितने भी बंधन
पीछे टूट गिरें सब।

शंख तुम्हारे हाथों का वह
बज-बज उठे जोर से रह-रह
छूटे गर्व, नींद टूटे यह

जगे तीव्रतर चेतना।
जनम - जनम की वेदना।

●

[78]

तुम जब कहते मुझसे, गीत सुनाओ
उठती छाती फूल गर्व से भर कर;
छल-छल हो आती अपनी दो आंखें
ठहर निमेष विहीन तुम्हारे मुख पर।

कठिन और कटु जो भी है प्राणों में
गला चाहते अमृतमय गानों में
मेरी सब साधना आराधन मेरे
उड़ा चाहते विहगों- से फैला पर।

परितृप्त मेरे गीतों से तुम हो
लगते भले, भले लगते ये तुम को
खूब जानता, इन गीतों के ही बल
मैं बैठता तुम्हारे सम्मुख जाकर।

मन से जिसका नहीं पता तक पाता
उन्हीं पदों को गीतों से छू लेता
कह कर बंधु बुलाता अपने प्रभु को
सुर के नशे आपको सदा भुलाकर।

●

मेरे मन का जिसमें सारा प्यार
प्रभु तुमको जाये, तुमको जाये, तुमको जाये
गहरी आशाओं की सभी पुकार
प्रभु कानों छाये, कानों छाये, कानों छाये।

जब भी रहे जहां भी मेरा यह मन
हर पुकार पर उत्तर दे वह तत्क्षण
जो बाधा है, सब को तव आकर्षण
प्रभु तोड़ गिराये, तोड़ गिराये, तोड़ गिराये।

बाहर की यह भीख भरी जो थाली
अबकी जिसमें हो वह बिल्कुल खाली
दान तुम्हारा पा मेरा उर चुपके
प्रभु भर-भर आये, भर-भर आये, भर-भर आये।

प्रियतम मेरे, ऐ मेरे अंतरतर
इस जीवन में जो कुछ भी है सुन्दर
आज तुम्हारे गीतों के गुंजन से
प्रभु गूंज उठाये, गूंज उठाये, गूंज उठाये।

●

[80]

दिन रहते आये वे सब
मेरे घर।
किसी एक कोने रह लेंगे
कह कर।

कहा, देव- पूजा अर्चन में
हम सहायता तुमको देंगे
पूजा बाद मिले जो,
रह लेंगे प्रसाद पर।

ऐसे दीन मलीन हीन
बन आये
दुबके रहे एक कोने
सकुचाये।

किन्तु रात हो उठे प्रबलतर
पैठ पड़े पूजाघर भीतर
लेने लगे मलिन हाथों सब
भोग- राग हर।

●

[81]

वे वसूलते बाट बीच
महसूल तुम्हारे नाम।
घाट पहुंच देखूं, खेवा को
भी रह गया न दाम।

स्वांग तुम्हारे कामों का कर
धन मन सब कुछ ही लेते हर
जो भी थोड़ा पास, छोड़ते
उसका नहीं छदाम।

कपट वेशधारी उस दल को
लिया आज पहचान;
वे भी चीन्ह चुके हैं मुझको
अबल निपटतर जान।

दिया फेंक सो कपट रूप को
लाज-शरम कुछ रहा न अब तो
अंकड़ खड़े हो आज राह में
मुझे लिया है थाम।

●

[82]

खिली चांदनी रात, उनींदे प्राण;
पास तुम्हारे आज मिलेगा स्थान !

देख सकूंगा वह अपूर्व मुख,
हृदय रहेगा उन्मुख उत्सुक,
घूमेंगे चरणों से लिपटे
मेरे गीले गान।

मैं उन चरणों पर साहस कर,
अपना अंतर नहीं सका धर,
गड़ा हुआ हूं, कहीं न लौटा दो
मेरे वह दान।

मेरा हाथ पकड़ कर तुम जो
आकर पास उठा लो मुझको
प्राणों की रिक्तता उसी क्षण
हो जाये अवसान।

●

[83]

तै था, एक तरी में हम-तुम दो जन
बहते जाएंगे, बहते ही केवल
त्रिभुवन में कोई पाएगा जान न
किस तीरथ को कहां रहे हैं हम चल।

उस अपार सागर के बीचोबीच
कानों तुम्हें सुनाऊंगा मैं गीत
लहरों जैसी भाषा बंधनहीन
वह रागिनी सुनोगे चुप हंस निर्मल।

समय नहीं क्या हुआ आज भी
काम पड़ा है बाकी
अरे, संध्या उतर रही है सागर तीरे

खोल पंख धुंधली किरणों में
सिंधु पार के पाखी
पहुंचे अपने- अपने सभी बसेरे

कब तुम आओगे नौका के घाट
मेरा यह बंधन देने को काट
डूबे सूरज की अंतिम आभा-सी
निरुद्देश नौका निशीथ में दे चल।

●

[84]

खुले जगत में, घर की संकरी
ओट हटा कर।
निकल सकूंगा, कब प्राणों के
रथ पर बाहर।

प्रबल प्रेम से सब में हिलमिल
हाथ बंटा धंधों में खिलखिल
तुमसे होगी भेंट जिन्दगी
के मेले के पथ पर

बाहर निकल सकूंगा कब
प्राणों के रथ पर।

आशा - अभिलाषामय
सुख - दुख के सागर में
कूद झेल लूं हलकोरे
वक्षस्थल पर मैं।

भले बुरे के यों झकझोरे
अंतर में जग उठूं तुम्हारे
सुनूं विश्वजन के कलरव में
गुंजित वह स्वर।

बाहर निकल सकूंगा कब
प्राणों के रथ पर।

●

[85]

ऐसे और अकेले नहीं
भटकना है बस
मन के ही सीमित कोने में
सिमट मोहवश।

अपनी बाहु- लता में तुमको
लिपटा लघु करना चाहो जो
बरबस लिया आपको अपने
बंधन में कस।

जब तुम मुझे मिलोगे आकर
निखिल भुवन में
पाऊंगा हिय में हृदयेश्वर
को उस क्षण मैं।

मेरा चित वृन्त है केवल
लगा उसी पर विश्व-सहसदल
और उसी पर पूर्ण प्रकाश
दिखाओ हंस-हंस।

●

[86]

तुमने मुझे जगाया जब झकझोर
तो यों लौट न जाओ, डालो
कृपादृष्टि की कोर।

गहन विपिन की डाल-डाल पर
आसाढ़ी घन बरसे झर-झर
बदली से अलसाया अंतर
सोयी रात विभोर।

बिजली की अविराम कड़क से
आज उनींदे प्राण ;
वर्षा की झमझम से मिलकर
गाना चाहे गान।

मेरा मन आंसू में गलकर
तिमिर तले हो आता बाहर
व्याकुल हो दो हाथ बढ़ाकर
खोजे नभ का छोर।

मत लौटो, मत लौटो, डालो
कृपादृष्टि की कोर।

●

[87]

चुन लो, मुझे वृन्त से चुन लो
और विलंब नहीं कर।
जी में जगता है भय, जाऊं
कहीं न माटी में झर।

फूल तुम्हारी माला में यह
स्थान पायेगा तुम्हारा, उसके
यह आघात तुम्हारा, उसके
बदा भाग्य में हो पर।

तोड़ो, तोड़ो और विलंब नहीं कर।

कब जो बुझ जायेगा दिन
घिर आयेगी अंधियारी,
बीत जायेगी अनजाने
पूजा की घड़ी तुम्हारी।

जो भी थोड़ा रंग रमा है
सुरभि और रस हिये जमा है
उसे लगा लो अपनी
सेवा में रहते ही अवसर।

तोड़ो, तोड़ो और विलंब नहीं कर।

●

[88]

मुझे प्यार तुम से है,
तुमको ही करता मैं प्यार
यही सत्य जी से करने दो
सदा मुझे स्वीकार।

और चाह चाहे जो लेकर
मारा फिरता हूं निशि- वासर
वह सब झूठ, झूठ है वह सब
तुम पर हृदय निसार।

जैसे रात छिपाये रहती
विनय जोत की निर्मल,
वैसे मैं घिर महामोह में
तुम्हें चाहता केवल।

आंधी लेती सौम्य शांति पर
जी में शांति चाहती है पर
वैसे तुम्हें दुखाता तो हूं
फिर भी करता प्यार

मुझे प्यार तुम से है,
तुमको ही करता मैं प्यार।

●

[89]

मेरा प्रेम नहीं तो कायर
नहीं हीनबल।
वह क्या बरसायेगा बेकल
आंसू केवल।

मंद-मधुर सुख-शोभा यह जो
निद्रातुर क्यों करे प्रेम को
साथ जागना चाहे वह तो
आनन्द- पागल।

जब नाचते रूप भीषण घर
तालों का आघात तीव्रतर
भागे भय लज्जा से पड़कर
दुविधा- विह्वल।

इसी भयंकर को मनभाये
मेरा प्रेम विहंस अपनाये
आशा के निजक्षुद्र स्वर्ग को
भेज रसातल।

अभी सह्य आघात और भी;
और कठोर प्रहार;
और कठिन सुर में छेड़ो
मेरे जीवन के तार।

राग जगाते जो प्राणों में
अभी बजे न चरम तानों में
निठुर मूर्च्छना से गानों में
मूर्ति करो संचार।

लगे नहीं उस पर प्रभु जैसे
केवल करुणा कोमल;
मंद मधुर स्वर के कौतुक से
प्राण करो मत निष्फल

सर्द उसांसें जल-जल आये
हवा गरज कर लहर उठाये
करो निखिल आकाश जगाये
परिपूर्णता - प्रसार।

●

तुमने भला किया यह निदयी
तुमने भला किया।
इसी तरह दारुण दाहों से
दग्धो सकल हिया।

सुलगाये बिन नहीं धूप यह
कुछ भी गंध लुटाती महमह
बिना जलाये नहीं नेक भी
देता जोत दिया।

चेतनहीन पड़ा रहता है
मेरा हृदय कहीं जो
चोट, अरे वह नेह परस है
उचित इनाम वही तो।

अंधियारे में जाल मोह से
आंखों तुम जो नहीं दीखते
बिजली से ज्वालामय कर दो।
मेरा मलिन जिया।

●

[92]

जान देवता तुम्हें, दूर रहता हूं
अपना जान नहीं कर पाता आदर।
पिता मान पांवों प्रणाम करता हूं
बंधु समझ दो हाथ न पाता हूं धर।

जहां नेह से खिंच, तुम अपने आप
मेरे होकर उतर पड़े चुपचाप।
वहां खुशी से लगा हृदय से अपने
अपना पाता तुम्हें न साथी कहकर।

प्रभो, भाइयों में तुम जो भाई हो
फिर भी भूले उन्हें न झांकूं मैं तो
बांट बराबर उनमें अपना वैभव
क्यों न तुम्हारी मुट्ठी देता हूं भर।

सब के सुख-दुख में तत्पर हो बाहर
खड़ा होता पास तुम्हारे जाकर
प्राण सौंपकर क्लांतिहीन कामों में
कूद न सकता जहां प्राण का सागर।

●

[93]

हाथ बंटाने उसमें मुझे न दोगे
काम कर रहे तुम जो।
मुझको जगा न दोगे अपने हाथों
अवसर जो आये तो ?

भले- बुरे उत्थान -पतन में
तोड़- जोड़ के परिवर्तन में
जगती की शाला में तुमसे मेरा
पास खड़े परिचय हो।

सोचा था, है जहां न आवाजाई
उस छाया निर्जन में
मुझसे- तुमसे चीन्हाजानी होगी
किसी सांझ के क्षण में।

एकाकी तुम में जो देखा
वह तो जैसे सपना देखा
क्रय-विक्रय चलता जिस हाट तुम्हारा
वहीं बुला लो मुझको।

●

[94]

जहां जगत के साथ हिले तुम करते नित्य विहार।
मेरा भी सहयोग वहीं पर साथ तुम्हारे, प्यार !

वन में कहीं न कहीं विजन में
और न मेरे अपने मन में
सबके स्वजन जहां, मेरे भी
अपने वहीं उदार।

मेरा भी सहयोग वहीं पर साथ तुम्हारे, प्यार !

जहां सभी के लिए खड़े तुम अपने पाणि पसार।
वहीं, वहीं उमड़ेगा मेरे हिय का प्रेम अपार।

घर में प्रेम न छिपे छिपाये
प्रखर जोत- सा छिटक पराये
सबके जहां खुशी के धन तुम
मेरे भी सुख- सार।

जहां जगत के साथ हिले तुम करते नित्य विहार।
मेरा भी सहयोग वहीं पर साथ तुम्हारे, प्यार !

●

[95]

मुझे पुकारो, लो तुम मुझे पुकार।
जहां तुम्हारा स्निग्ध सुशीतल
शुचितम पारावार।

जीवन को करते रज-धूसर
ये ओछे दिन क्लांति ग्लानिकर
प्रतिपल मन के और बचन के
मैले सहसा विकार।

मुझे पुकारो, लो तुम मुझे पुकार !

मुझे उबारो, लो तुम मुझे उबार
जहां तुम्हारा मौन अनंत
निविड़ तम पारावार।

नीरव निशि में वाक्यहीन हो
बाहर - बाहर में जाये खो
मेरा अंतरतम प्रकटित हो
धर अखंड़ आकार।

मुझे उबारो, लो तुम मुझे उबार।

●

[98]

रहूं सदा उस मुख की ओर निहारे
यही एक इच्छा पूरी हो प्यारे।

केवल देखूं अपलक नैन बिछाये,
केवल मन की लौ को रहूं लगाये,
व्यथा- कामना, काम काज दैनंदिन
सब की लगी भीड़ में एक किनारे

रहूं सदा उस मुख की ओर निहारे।

इच्छा अगिन, दौढ़ की विविध दिशा रे
सफल एक ही यह इच्छा हो प्यारे।

रहे रात पर रात सतत वह जागी
जला एक की अबुझ व्यथा की आगी

दिन पर दिन वह उसी एक को गूंथे
एकसूत्र में, गीत एक ही गा रे।

रहूं सदा उस मुख की ओर निहारे।

●

[99]

फिर आया आसाढ़, गगन में छाया,
मंद पवन में सोंधा सौरभ
पावस का लहराया।

फिर से मेरा यह बूढ़ा अंतस्तल
लगा नाचने गाने पुलकित चंचल
नये सघन घनश्याम सजल की
देख मोहिनी माया।

फिर आया आसाढ़, गगन में छाया।

दूर प्रसारी खेतों पर रह-रह कर
छांह मेघ की पड़ती नव तृण दल पर
'आया वह आया' ये रटते प्राण
'आया वह आया' के उठते गान

आकर बसा नयन में मेरे
मन में समुद्र समाया।

फिर आया आसाढ़, गगन में छाया,
मंद पवन में सोंधा सौरभ
पावस का लहराया।

●

[100]

आज मानव में वर्षा का रूप निखरता
घुमड़ घोर चलता है लरज-गरजता।
मन में उसके नाच उठी है भीमा
उमग-उमग कर छापे चलती सीमा

छाती से छाती मिल घन से घन की
किस ताड़न से वज्र भयंकर बजता।

पुंज - पुंज में दूर - सुदूर अजाने
दल के दल क्यों चलता है, क्या जाने
कुछ न पता किस महा अद्रि के तल में
सावन में गल पिघल पड़ेगा जल में

उसे पता क्या समारोह में उसके
जीवन-मरण कौन-सा भीषण बसता।

वह ईषाण कोण में लो झंझा की
गुरु-गुरु वाणी करती कानाफूसी
क्षितिज -ओट में बैठ कौन-सा भावी
स्तब्ध तिमिर में ढोता मूक व्यथा-सी

छायातल में श्याम कल्पना - जादू
किस आसन्न कार्य आता घिरता।

●

[101]

मेरे देव, लबालब भर कर मेरा यह तन- प्राण
बोलो, चाह रहे तुम करना किस अमृत का पान ?

अपनी निखिल रूप- रचना को मेरी आंखों से क्या
तुम्हें देख लेने की होती है मन में अभिलाषा
कवि, तुम बैठे मौन स्वर मेरे ही मुग्ध श्रवण से
सुन लेना क्या चाह रहे हो अपना मधुमय गान !

मेरी चित्त- भूमि में आती यह जो सृष्टि तुम्हारी
रच देती है एक अनूठी ही वाणी बलिहारी
मिलकर साथ उसी के दुर्लभ देव, तुम्हारी प्रीत
जगा - जगा जाती मेरे अंतर के सारे गीत

एक मधुर रस में यों अपने को तुम देख रहे हो
अपने को संपूर्णतया मुझको ही देकर दान !
मेरे देव, लबालव भर कर मेरा यह तन -प्राण
बोलो, चाह रहे तुम करना किस अमृत का पान ?

●

[102]

यही एक है साध कि इस जीवन में,
गूंजे तव आनन्द गीत की धुन में।

मुक्त ज्योति की धारा, गगन तुम्हारा
फिरे न संकरा द्वार देख मनमारा
छे ऋतुएं निज सहज नृत्य में आयें
नित्य नये बानों में मेरे मन में।

यही एक साध कि इस जीवन में।

मन में, अंगों में आनन्द तुम्हारा
बाधा पाकर नहीं बने बेचारा।
वह आनन्द परम दुःखों में मेरे
जागे जैसे पुण्य प्रकाश विखेरे

जीवन की सब दूर दीनता करके
फूट फटे सब कामों में क्षण-क्षण में।
यही एक है साध कि इस जीवन में,
गूंजे तव आनन्द गीत की धुन में।

●

[103]

मैं तुमसे अभिसार हेतु
एकाकी बाहर निकला ;
दुबक अंधेरे में पीछे लग
फिर यह कौन चला ?

हर कुछ करूं कि जाये वह हट
मैं मुड़ चलूं कि खिसक पड़े झट
किन्तु तुरन्त ही हाजिर, जब मैं
सोचूं टली बला।

दुबक अंधेरे में पीछे लग
फिर यह कौन चला ?

धरती धमसाये चलता वह
ऐसी विषम चपलता;
सब बातों में अपनी ही
कहने की उसे विकलता ।

वह तो प्रभु मेरा 'मैं' ही है
कभी न जिसको हया रही है
उसके साथ चलूं मैं द्वारे
क्या मुंह लिए भला !

मैं तुमसे अभिसार हेतु
एकाकी बाहर निकला ।

●

[104]

अपलक आंखों देख रहे
तुम सबको उत्सुक प्राण।
सब में, सबके बीच मुझे भी
दो छोटा - सा स्थान।

नीचे, नीचे से नीचे इस धूल भरी धरती पर
जहां नहीं आसन का लगता दाम, नहीं कोई कर
खिंची लकीरों से न विभाजित कोई वस्तु जहां की
जहां एक से भेदरहित हैं
मान और अपमान।

नहीं आवरण जहां एक भी रह जाता बाहर का
वसनविहीन नग्न परिचय है अपने उर-अंतर का
नहीं एक तिनका भी कोई 'मेरा है' कहने को
अवगुंठन में जहां सत्य यह ढंके नहीं अपने को

वहीं खड़े होकर अपनी
यह बिछा दीनता नंगी
भर लूंगा उसमें मैं प्रभु का
चिर वांछित वरदान।
सब में, सब के बीच मुझे भी
दो छोटा - सा स्थान।

•

[105]

ढोऊंगा अब नहीं आपको
अपने सिर पर;
कंगला बनकर नहीं रहूंगा
अपने दर पर।

चरण तुम्हारे रख यह बोझा
निकल पडूंगा मैं बेपरवा
खोज- पुछार नहीं, न करूंगा
भूले कभी कहीं चर्चा भर।

ढोऊंगा अब नहीं आपको अपने सिर पर।

मेरी यह कामना जिसे भी छू लेती है
पलक मारते बुझा जोत उसकी देती है

यह पापन जो मुट्ठी भर-भर
लायी है, लूंगा न भूल कर
जिसमें बजे न प्रेम तुम्हारा,
नहीं सकूंगा उसे सहन कर।

ढोऊंगा अब नहीं आपको अपने सिर पर।
कंगला बनकर नहीं रहूंगा अपने दर पर।

●

[106]

मेरे चित्त पुण्य तीरथ में जागो मंथर;
इस भारत के महामनुज के सागर तट पर।

यहां खड़े हो बढ़ा बाहु दो
मनुजदेव को नमस्कार कर,
मुक्ति छंद में महानन्द से,
वंदन उसका बार-बार कर।
ध्यानमग्न यह जो है भूधर
नदी जापमाला धृत प्रांतर

यहां नित्य धरती पवित्र को हेरो जी भर।
इस भारत के महामनुज के सागर तट पर।

कौन बताये किसके लाये
कितनी मानव- धारा;
सबल स्रोत में चली कहां से
हुईं सिंधु में हारा
यहां आर्यजन ओ अनार्यगण
यहां द्राविड़ी चीन

हूण मुगल, शक पाठानी दल
एक देह से लीन
पश्चिम ने खोला दरवाजा
ले उपहार रहे सब आ जा

ले दे मिल के यहीं रहेंगे बना इसे घर।
इस भारत के महामनुज के सागर तट पर।

धर रणधारा विजय-गीत गा
शोर मचा उन्मादी
लांघ मरुस्थल पर्वत जंगल
लाये थे बर्बादी

वे सब के सब हैं मुझ से अब
कोई दूर नहीं है
मेरे खूं में यह जो गूंजे
स्वर सो उसका ही है

अरी, रुद्र- वीणा तू बज री
दूर खड़े जो विन से अब भी

बंध भेद के आयेंगे वे घिरे घेर कर
इस भारत के महामनुज के सागर तट पर।

यहां एक दिन पल-पल छिन-छिन
महा ओम् की वाणी
हृदय तन्त्र में एक मंत्र में
गूंजी थी कल्याणी

तप के बल से एक अनल में
आहुति बहु की देकर
भेद मिटा था जाग उठा था
एक असीमित अंतर।

उसी साधना आराधन की
खुली यज्ञशाला की वेदी

यहां सबों का मिलना होगा आनत कर सर।
इस भारत के महामनुज के सागर तट पर।

उसी अनल से उठती हैं ये
दुख की रक्तिम रेखा,
सहना होगा दहना होगा
यही भाग्य का लेखा
यह दुख है जो रे मन ले ढो
सुन वह एक पुकारे;
सभी लाज भय करो-करो जय
चिर अपमान मिटा रे।

यह दुस्सह दुख दूर हटेगा
फिर तो महत् प्राण जनमेगा

निशा सिराती जननी जगती विपुल नीड़ भर
इस भारत के महामनुज के सागर तट पर।

आओ आर्य अनार्य पधारो
हिन्दू मुसलिम भाई
आओ हे अंग्रेज आज तुम
आओ बंधु ईसाई
आओ ब्राह्मण, कर पवित्र मन
सब के कर धर लाओ
आओ पतित हर्ष पुलकित चित
सब अपमान भुलाओ

आज मातृ अभिषेक, चलो झट
लाया नहीं गया मंगल घट

सब के सरस परस से पावन तीर्थ सलिल भर।
इस भारत के महामनुज के सागर तट पर।

•

अधमाधम दीनातिदीन जन रहते जहा - जहां रे
वहीं वहीं तो राजित चरण तुम्हारे
सब के पीछे सब के नीचे
सबहाराओं में रे।

जब मैं तुम्हें नवाता अपना माथा
कहां न जानें वह प्रणाम थम जाता

अपमानों में जहां उतर आते हैं चरण तुम्हारे
पहुंच न पाता मेरा नमन वहां रे
सबके पीछे सब रे नीचे
सबहाराओं में रे !

अहंकार छू तुम्हें न पाता जहां लगाते फेरा
भूषणहीन दीन बन, बन बेचारा
सब के पीछे सब से नीचे
सबहाराओं में रे।

जहां मान धन का भरपूर खजाना
वहीं चाहता हूं मैं तुमको पाना

किन्तु जहां अवलंबहीन में संगी बनकर हो तुम
वहां उतर सकता न हृदय अपना रे
सब के पीछे सब से नीचे
सबहाराओं में रे।

●

अरे अभागे देश, किया जिनका तुमने अपमान,
अपमानों में होना होगा उनके साथ समान।
जिन्हें मनुज के हक से किंचित
कर रखा है तुमने वंचित

रखकर सम्मुख खड़ा न फिर भी दिया गोद में स्थान।
अपमानों में होना होगा सबके साथ समान।
मानव के स्पर्श को प्रतिदिन रख अपने से दूर,
उनके प्राणों के ठाकुर से घिन की है भरपूर।

रुद्र रोष में विधि के पड़कर
बैठ अकाल द्वार पर गड़ कर
सबके साथ बांट कर करना होगा भोजन- पान।
अपमानों में होना होगा उनके साथ समान।

जहां उन्हें अपने आसन से ज़बरन दिया उतार,
स्वीय शक्ति को अवहेला से दूर किया दुत्कार,
पैरों तले बेरहम पिस कर
जाति मिली खाक में घिस कर

आओ उतर उसे ले वरना कहीं नहीं कल्याण।
अपमानों में होना तुम्हें पड़ेगा एक समान।
जिन्हें ढकेल गिराते वे बांधेंगे तुमको नीचे।
छोड़ा पीछे जिन्हें तुम्हें वे खींच रहे हैं पीछे।

जिन्हें अज्ञता- अंधकार से
ओट दिये रहते हो ढांके
मंगल ढांक तुम्हारा रचते वही घोर व्यवधान।
अपमानों में होना होगा सबके साथ समान।

लदता आता सदियों से सिर असम्मान का भार,
फिर भी नर-नारायण को करते न प्रणाम विचार।
फिर भी नीचे नजर झुकाये
अरे अभागे, देख न पाये

उतर धूल पर हीन पतित के आये हैं भगवान।
अपमानों में होना होगा सबके साथ समान।
नहीं देखतं मृत्युदूत मुस्तैद खड़ा है द्वारे।
देख जाति का अहंकार अभिशाप ललाट लिखा रे।

सबको अब भी यदि न पुकारे
रहे अलग जो खड़े किनारे
अपने को घेरे चौतरफा तान - तान अभिमान।
एक समान खाक कर देगी फिर तो मौत, मसान।

अरे अभागे देश, किया तुमने जिनका अपमान,
अपमानों में होना होगा सबके साथ समान।

●

[109]

धरे रहो, धीरज मत छोड़ो
होगी जय निश्चय।

फटा जा रहा सघन अंधेरा
अरे न, अब कुछ भय।
होगी जय निश्चय।

देख, उधर पूरब सुभाल में
गहन विपिन के अंतराल में
होता शुक्र उदय।

अरे, न अब कुछ भय।
होगी जय निश्चय।

ये सारे हैं केवल निशिचर
अविश्वास सब अपने ऊपर
ये प्रभात के नहीं, निराशा
आलस औ संशय।

दौड़ निकल आ घर से बाहर
देख, हो रहा सिर के ऊपर
अंबर ज्योतिर्मय।

अरे, न अब कुछ भय।
होगी जय निश्चय।

●

[110]

भरा हुआ है हृदय अभी तो मेरा
अब जो जी चाहे तुम वही करो;
इसी तरह जो मन में करो बसेरा
बाहर का मेरा सर्वस्व हरो।

जहां सभी प्यासों का हो अवसान
उसी तृप्ति से भर दो जो ये प्राण,
उसके बाद धधकते मरु के पथ में
चाहे जितनी तीखी धूप धरो
अब जो जी चाहे तुम वही करो।

यह जो खेल खेलते इतने छल से
उसी खेल से मुझको प्यार तुम्हारे;
इधर भिगोते नैन-घटा के जल से
और इधर देते हो हंसी निखारे।

जब मैं सोचूं, सब कुछ हाय गंवाया,
तभी ढूंढ़ कर उसे निकटतर पाया;
कभी गोद से दूर फेंक जो देते
लगा हृदय से लेते हो आकुल हो
बाहर का मेरा सर्वस्व हरो।

●

[111]

अंतर्यामी, कभी गर्व से बनता नाम न लेते
मेरे मुख से सोहेगा भी लेना नाम तुम्हारा
मेरी हंसी उड़ा कर जब सब लोग मुझे लजवाते
सोचूं, भला कंठ से जायेगा भी नाम पुकारा !

तुम से बड़ी दूर रहता एकाकी
यह जानना नहीं रह जाये बाकी
नाम गान के इसी बहाने कहीं न परिचय दे दूं
मरता हूं मैं इसी लाज का मारा।

अहंकार की मिथ्या से मुझको कर दया, बचाओ
रखो वहीं जहां है मेरा स्थान;
और सभी की लगी नजर से मुझको दूर हटाओ
अपनी नवी निगाहों का दो दान।

मेरी पूजा दया मांगने भर को,
मान न इसका कहीं किसी के घर हो
रोज-रोज मैं बैठ धूल पर तुमको विकल पुकारूं
नित्य नया अपराध किये, बेचारा।

मेरे मुख से सोहेगा भी लेना नाम तुम्हारा !

●

कौन कहे सब छोड़ चलेगा
मौत थाम लेगी जब कर दो।
जीवन में जो लिया, मरण में
ले चलना होगा उन सबको।

इस भंडार भरे में आकर
छूछे ही चल दोगे आखिर
लेने लायक जो कुछ भी है
भली तरह ले ही लो तब तो।

जो कोरा कतवार बटोरा
किया यहां दुनिया में दिन-दिन;
जी जाओ, जाने की वेला
सब क्षय कर जाओ जो गिन-गिन।

आये हैं माटी के भू पर
बन-ठन लें सिंगार सजा कर
राज वेश में चलो विहंसते
मृत्यु पार के उस उत्सव को।

जीवन में जो लिया, मरण में
ले चलना होगा उन सबको।

●

[113]

नदी पार के इस आसाढ़ी
प्रात मुखर को।
रे, मेरे मन, खींच हृदय में
अपने भर लो।

हरित नील स्वर्णिम ने मिल कर
बिखराया है अमृत जो भर
गुंजा दिया नीले अंबर पर
गहरा स्वर जो।
रे, मेरे मन खींच हृदय में
अपने भर लो।

इसी तरह भव में पथ चलते
हुए किनारे;
दोनों ओर फूल जो फूलें
चुन लेना रे।
उन्हें चेतना से अपनी भर
गूंथ लिया करना निशि - वासर

बड़े जतन से सिहा - सिहा कर
भाग्य सुघर को।
रे, मेरे मन, खींच हृदय में
अपने भर लो।
नदी पार के इस आसाढ़ी
प्रात मुखर को;

●

[114]

जिस दिन संध्या को पहुंचेगा
मरण तुम्हारे द्वार !
क्या धन उस दिन दोगे उसे संवार ?

भरा लबालब अपना अंतर
मैं उसके सम्मुख दूंगा धर
छूछी नहीं विदाई दूंगा
यह दूंगा उपहार।
आयेगा जिस रोज मरण
संध्या को मेरे द्वार।

कितनी शरत् वसंत शर्वरी
कितनी संध्या प्रात सिंदूरी
रस बरसाते कितना जीवन- घट में।
जानें कितने फूल और फल
भर- भर देते मन को पल- पल
दुख-सुख के छायातप की आहट में।

जो कुछ भी मेरा संचित धन
अब तक का सारा आयोजन
अंतिम दिन में उसके आगे
दूंगा सभी पसार।
आयेगा जिस रोज मरण
संध्या को मेरे द्वार।

●

[115]

करके दया, चाह कर खुद लघु बन कर
आते हो तुम आप अकिंचन के घर।

इसीलिए माधुरी तुम्हारी
भूख आंख की हरती सारी
दरस दिखाते जल में थल में
आकृति क्या - क्या धर - धर !

आते हो तुम आप अकिंचन के घर

हो कर पिता, सखा हो, जननी बन कर
बन खुद ही लघु आ कर भरते अंतर।

तो क्या मैं भी अपने हाथों
तुच्छ करूंगा विश्वनाथ को
तुम्हें जनाऊंगा, जानूंगा
इसी क्षुद्र परिचय पर !

आते हो तुम आप अकिंचन के घर।
करके दया चाह कर खुद लघु बन कर।

●

[116]

चरम पूर्णता मेरे इस जीवन की ;
मेरे मरण, कहो तुम मुझसे मन की।

महज तुम्हारे लिए जनम भर
बिता रहा अनुदिन मैं जग कर
ढोता फिरता हूं असीमता
सुख-दुख के वेदन की।

जो, पाया, बन पाया जो मैं
मन की आशा जो भी ;
मेरा सारा प्यार अजाने
जाता है तुमको ही।

एक, एक शुभ दृष्टिपात में
मिलन मनेगा बात-बात में
चिर अनुगता तुम्हारी होगी
नवल वधू जीवन की।

मेरे अंतरतम में गूंथी
रखी है वरमाला ;
कब वर बन आओगे चुपचुप
फैला हास उजाला।

उस दिन नहीं रहेगा यह घर
अपना कौन, कौन तो फिर पर
विजन, रात में छाया होगी
साध्वी स्वामि- चरण की।

मेरे मरण, कहो तुम मुझसे मन की।

●

[117]

मैं राही चिर तत्पर।
रख न सकेगा, कोई मुझे पकड़ कर।

झूठे सुख - दुख के बंधन सब ही ये,
होगा पड़ा कहां तो यह घर पीछे
बोझ विषय के मुझको खींचे नीचे
टूट गिरेंगे वे सब यहीं बिखर कर।

मैं राही चिर तत्पर।
गाता गीत राह चलता मैं जी भर।

देह - दुर्ग के द्वार खुलेंगे सारे,
बंध वासना के टूटेंगे हारे
भले बुरे के करके पार किनारे
लोक-लोक को चलता चलूं निरंतर।

मैं राही चिर तत्पर।
खिसक पड़ेंगे भार लदे जो सिर पर।

दूर मूझे आकाश अनंत पुकारे
भाषाहीन अजाने गान सुना रे
खींचे सांझ -विहान प्राण को मेरे
किसकी मुरली ऐसा गहरा स्वर भर !

मैं राही चिर तत्पर।
निकला जानें कौन सबेरे बाहर।

कहीं न तब कोई चिड़िया चहकी थी
जानें कितनी रात रही थी बाकी
केवल अपलक आंख एक एकाकी
जाग रही थी अंधकार के ऊपर।

मैं राही चिर तत्पर।
किस दिन डूबे पहुंचूंगा जा किस घर।

कौन तारिका दीया वहां संजोती
हवा कौन - सी कुसुम - गंध में रोती
वहां कौन दो स्निग्ध आंख अनसोती
खड़ी गड़ाये युग अनादि से मुझ पर।

मैं राही चिर तत्पर।
रख न सकेगा कोई मुझे पकड़ कर।

[118]

उड़ा पताका बादलभेदी रथ पर,
वहां रहे वे, वहां, देख लो पथ पर।

तुम्हें खींचनी होगी रस्सी, लपको
घर के कोने बैठे कहां अचल हो
कूद पड़ो, इस भरी भीड़ में मिल लो
किसी तरह से अपनी जगह बना कर।

पड़ा रह गया काम कौन-सा घर का,
आज भुलाना है सब इधर-उधर का।
अपना सारा तन-मन देकर खींचो
तुच्छ प्राण की माया तज कर खींचो

खींच ले चलो अंधकार में, द्युति में
नगर-ग्राम से, कानन से, पर्वत पर।
घूम रहे जो रथ के चक्के घर्घर,
छाती में सुन पाते हो क्या वह स्वर ?

नहीं नाचते प्राण रुधिर में हैं क्या
मरणजयी संगीत नहीं मन गाता ?
प्रबल बाढ़ की गति से क्या आकांक्षा
नहीं मारती विपुल भविष्यत् तक पर ?

●

[119]

पूजन भजन साधनाराधन
सब कुछ रहें धरे ;
रुद्ध द्वार मंदिर के कोने
क्यों तू पड़ा अरे !
अंधकार में छिपकर अपने आप
किसकी पूजा करता है चुपचाप
आंख खोल कर देख, देवता
घर में नहीं, परे।
वे गये गोड़ कर माटी खेती
करते जहां किसान ;
पत्थर तोड़ बनाते पथ हैं,
खटते सांझ - विहान।
धूप और वर्षा में सब के साथ
सने धूल से उनके दोनों हाथ
तजकर वसन पवित्र उन्हीं-सा
आ रे, धूलभरे।
मुक्ति खोज कर कहां पायगा,
रहती मुक्ति कहां ?
प्रभु तो सृष्टि - शृंखला में
खुद ही हैं बंधे यहां।
छोड़ ध्यान तज दे डाली के फूल
फटने दे कपड़े, लगने दे धूल
कर्मयोग में उनके संग-संग
रह - रह स्वेद झरे।

●

[120]

सीमा में, असीम, तुम अपनी
छेड़ रहे स्वर – लहरी।
इसीलिए अभिव्यक्ति तुम्हारी
मुझमें इतनी गहरी।

जाने कितनी वर्ण - गंध में,
मधुमय कितने गीत - छंद में
हे अरूप, रूपों की लीला
से जागे हिय – नगरी

होकर इतनी मधुर तुम्हारी
शोभा मुझमें निखरी।
हम दोनों का मिलन जहां
सब भेद वहां जाता खुल

उमग विश्व - सागर तब उठता
लहरों में पुलकाकुल
नहीं तुम्हारी द्युति की छाया,
मुझमें वह पाती है काया,

सुंदर विधुर बनाती उसको
धो मेरी दृग - गगरी।
मुझमें निखर तुम्हारी शोभा
इतनी सुंदर छहरी।

●

[121]

मुझ पर ही आनंद तुम्हारा निर्भर
इसीलिए तुम आये नीचे बेकल ;
अगर न मैं होता, त्रिभुवन के ईश्वर,
प्रेम तुम्हारा हो जाता जो निष्फल।

मेला यहां बसाया मुझको लेकर
मेरे हिय में रस का खेल निरंतर
धरे विचित्र रूप मेरे जीवन में
चाह तुम्हारी लहराती है छलछल।

राजा के राजा हो इसीलिए तो,
फिर भी मेरे ही अंतर की खातिर;
कितने मनहर वेश धरे फिरते हो
नाथ, नित्य जागा करते हो अस्थिर।

इसीलिए तो उतर यहां तुम आये
प्रेम तुम्हारा भक्त - हृदय पर छाये
वहां तुम्हारी मूरत युगल मिलन की
निखरी पूर्ण प्रकाशित झलमल झलमल।

●

[122]

नहीं तुम्हारे लिए मान का
आसन, शय्या सुखकर ;
सब का पल्ला छोड़ मगन मन
निकलो बाहर पथ पर।

आओ बंधु, सभी मिल-जुल कर
संग - साथ हम निकलें बाहर
सदा उपेक्षित रहे यहां जो
आज चलें उनके घर।

पहनेंगे निंदा के गहने
कांटों का गलहार;
सिर आंखों रख लेंगे, आओ,
अपमानों का भार।

जो अंतिम आलय दुखियों का
उसी धूल पर रखकर माथा
सूना पात्र त्याग का यह
आनंद - सुधा से लें भर।

●

पहुंची जिस दिन प्रभु के घर से
तुम वीरों की पांत।
कहां छिपा था उस दिन यह बल
विपुल, कहो, कुछ ज्ञात ?

कवच कहां, ये अस्त्र कहां थे
दीन क्षीण अवलंबहीन- से
आते रहे अनर्गल
चारों दिशि से विपदाघात।

पहुंची जिस दिन प्रभु के घर से
तुम वीरों की पांत।
पहुंची जिस दिन प्रभु के घर को
तुम वीरों की पांत।

उस दिन कहां छिपा जो फिर बल
विपुल, कहो, कुछ ज्ञात ?
वाण कृपाण कहां सब छूटा,
होठों हास शांति का फूटा,

कूच कर गये यहीं छोड़ सब
जीवन- फल अवदात।
पहुंची जिस दिन प्रभु के घर को
तुम वीरों की पांत।

●

[124]

सोचा, जो होना था, होकर शेष
चलना अपना आकर रुका अशेष।

राह न आगे रही, न कोई काज,
जो कुछ था पाथेय, चुक गया आज,
नीरव अंतराल में जाना होगा
लिये जीर्ण जीवन यह, मैला वेश।

किंतु अरे, कैसी अनंत यह लीला
बहती क्या नूतनता अंतःशीला।
मुंह में जब भर आये बोल पुरातन
गूंज उठे अंतर में बन नव गायन।

अंत जहां हो गया पुराने पथ का
वहीं मुझे पहुंचाया नूतन देश।
सोचा, जो होना था, होकर शेष
चलना अपना आकर रुका अशेष।

●

[125]

मेरे गीतों ने सब अपने
गहने दिये उतार ;
नहीं तुम्हारे निकट गर्व का
कुछ रखा श्रृंगार।

ओट बीच की बनकर गहने
बाधक बनते पूर्ण मिलन में
ढंक-ढंक देती बात तुम्हारी
उसकी कटु झंकार।
नहीं तुम्हारे निकट गर्व का
रखा कुछ श्रृंगार।

नहीं सोहता दंभ तुम्हारे
आगे कवि का मेरा ;
चाह रहा मैं बनूं महाकवि,
उन चरणों का चेरा।

जो मैं अपना यह जीवन ले
सरल बांसुरी गढ़ूं जतन से
उसके छेदों में भर दोगे
अपना स्वर- संभार।
मेरे गीतों ने सब अपने
गहने दिये उतार।

●

[126]

निंदा दुख अपमान हृदय को
जितना क्यों न दुखाये,
फिर भी है विश्वास, वहां कुछ
व्यर्थ नहीं खो पाये।

मलिन धूल पर पड़ा रहूं तो
आसन की चिंता ही क्यों हो
मांग दीनता में प्रसाद लूं
बिना तनिक सकुचाये।
फिर भी है विश्वास, वहां कुछ
व्यर्थ नहीं खो पाये।

मुझे लोग जब भला बताते
मेला लगा सुखों का ;
खूब जानता, उसमें केवल
भरा हुआ है धोका।

उन धोकों को सजा-गुजा कर
ढोये फिरता हूं माथे पर
जाऊं शरण तुम्हारी, ऐसा
अवसर हाथ न आये।
फिर भी है विश्वास, वहां कुछ
व्यर्थ नहीं खो पाये।

●

[127]

जिस शिशु को राजा के बानक में तुम सहज सजाते
पहनाते जिसको मणि - कंचन - हार
खेल - कूद आनंद सभी उसके विरूप हो जाते
भूषण - वसन कठिन हो उठते भार।

कहीं चोट खा टूट न जाये
कहीं दाग रज का न लगाये
सोच समेट आपको सब से रखता अलग बचा के
चलते होती उसको सोच अपार।

जिस शिशु को राजा के बानक में तुम सहज सजाते
पहनाते जिसको मणि - कंचन - हार।
साज - बाज मां, राजा को ले कर क्या होगा बोलो
क्या होगी मणि-रत्नहार की संपत।

खुली राह में निकल पडूं जो बंद किवाड़ें खोलो
हवा धूप में धूल- कीच में लतपत।
जहां लगा मेला जन - गण का
नया - नया कौतुक हर क्षण का

बजती गाथा एक विराट चतुर्दिक सहज सुरों में
वहां नहीं जो पाता वह अधिकार !
जिस शिशु को राजा के बानक में तुम सहस सजाते
पहनाते जिसको मणि - कंचन - हार।

●

[128]

उलझ गये आपस में इसके
मोटे - पतले तार,
इसीलिए जीवन - वीणा की
ठीक नहीं झंकार।

इसी बेसुरी उलझन से तो
मरते प्राण व्यथा - कातर हो
गीत अचानक थम जाते जो
मेरे बारंबार।
उलझ गए आपस में इसके
मोटे - पतले तार।

नहीं वेदना यह अब तो मैं
ढो पाता हूं,
जाते हुए सभा में, लज्जित
हो जाता हूं।
और तुम्हारे जो हैं गायक
उनमें न मैं बैठने लायक
सबसे पीछे जाता हूं रुक
बाहर ही लाचार।

इसीलिए जीवन - वीणा की
ठीक नहीं झंकार।

●

[129]

गाने जैसा बना न कोई गान,
देने योग्य न बन पाया कुछ दान।

सभी रह गया बाकी, जी में होता
देता आया तुम्हें आज तक धोका,
जीवन को कर पूर्ण न जानें कब हो
इस जीवन की पूजा का अवसान।

गाने जैसा बना न कोई गान।

औरों की सेवा में जब मैं होता
थाल भेंट से भर भरपूर सजाये
जाने कितना मिथ्या- सत्य संजोता
कहीं दीनता की कलई खुल जाये।

तुमसे तो कुछ छिपा नहीं अपना बस
इसीलिए पूजा का इतना साहस,
जो भी कुछ है ले जाता चरणों में
खुला हुआ अपना दरिद्र यह प्राण।

देने योग्य न बन पाया कुछ दान।

●

[130]

मुझमें यहां तुम्हारी लीला होगी,
जग में मैं तो आया इसीलिए ही।

द्वार सभी इस घर के जायेंगे खुल
अहंकार मिट जायेंगे धुल बिल्कुल

खुशियां भरी तुम्हारी इस दुनिया में
नहीं रहेगा मेरा कुछ भी बाकी।

मर करके प्रभु, जब मैं जाऊंगा जी
जभी तुम्हारी लीला मुझमें होगी।
जग में मैं तो आया इसीलिए ही।

थम जायेगी सभी वासना चलकर
एक तुम्हारे परम प्रेम में मिलकर
सुख दुःखों के इस विचित्र जीवन में
एक तुम्हारे सिवा न होगा कुछ भी।
मुझमें यहां तुम्हारी लीला होगी।

●

[131]

क्या जाने दुःस्वप्न कहां से आकर
हलचल मचा-मचा जाता जीवन में ;
चिहुंक जागता, जग कर पाता आखिर
और न कुछ, है मां की गोद शयन में।

सोचूं, शायद होगा कोई और
इसीलिए जूझूं कसकर उस ठौर
हंसी तुम्हारी देख करूं जब गौर
समझूं, तुमने ही झकझोरा मन में।

क्या जानें दुःस्वप्न कहां से आकर
हलचल मचा-मचा जाता जीवन में।
सदा हिलाया करता यह जीवन तो
ले करके अपना सब सुख-दुख भय

जैसे उसके सिवा नहीं कुछ भी हो
मानो अपना सब कुछ उतना ही है।
यह भ्रम हो जायेगा दूर नयन से
निमिष मात्र में, आते प्रात-किरण के

ऐ परिपूर्ण, तुम्हारे सम्मुख जाके
सारी हलचल थम जायेगी क्षण में।
क्या जानें दुःस्वप्न कहां से आकर
हलचल मचा-मचा जाता जीवन में।

●

[132]

गीतों से मैं तुम्हें ढूंढ़ता
बाहर मन में
सब दिन अपने इस जीवन में।

गेय गीत ये मुझे लिवा कर
दरवाजे - दरवाजे घर - घर
गीतों के कर सहलाता
फिरता मैं अखिल भुवन में।

जानें कितने सबक सिखाये
कितने गोपन पंथ दिखाये
चिह्न दिये उसने कितने ही
तारे हृदय - गगन में।

देश विचित्र घुमा सुख-दुख का
और रहस्यलोक से लौटा
सांझ हुए ले आये आखिर
मुझको कौन भवन में ?

●

[133]

तुम्हें खोजना खत्म न होगा लेकिन
चुक भी जायेंगे इस जीवन के दिन।
जाऊंगा उस देश, जहां नव जीवन,

जाग उठेगा इन आंखों नव दर्शन
नयी जोत में उमग नहा, अभिनव बन
मिलन-मालिका पहनूंगा तब उस दिन।
तुम्हें खोजना खत्म न होगा लेकिन।

अंत तुम्हारा कहीं न, अंत नहीं है
इसीलिए लीला नित नयी - नयी है।
पता नहीं, फिर नया वेश क्या धरकर
थमक रुकोगे नाथ, राह में हंस कर

पास पहुंच थामोगे ये कर दोनों
भीड़ लगेगी नये भाव की अनगिन।
तुम्हें खोजना खत्म न होगा लेकिन,
चुक भी जायेंगे इस जीवन के दिन।

●

[134]

मेरे शेष गीत में पूरी सभी रागिणी हो ले,
मेरा सब आनंद उसी सुर में अपना मुख खोले।

जिस आनंद अमल में हंसती धूल भरी यह धरती
लता - लता तृण-वृण-तरु में आकुल-सी, अस्थिर-सी

जिस आनंद अकथ से मानों दो पागल हों, ऐसे
जीवन- मरण भुवन में अहरह फिरते डोले- डोले।

मेरा सब आनंद उसी सुर में अपना मुख खोले।

जो आनंद रूप तूफानी धर - धर कर है आता,
अट्टहास हंस - हंस कर सबके सोये प्राण जगाता।
रहता खड़ा अकंप निरंतर निर्मल आंसू- जल में,
दुःखवेदना के उन्मीलित शतदल रक्तकमल में,

फेंक धूल में सारी निधि को बना अकिंचन
जिस आनंद अनिर्वच के वश बनता वचन न बोले।
मेरा सब आनंद उसी सुर में अपना मुख खोले।
मेरे शेष गीत में पूरी सभी रागिणी हो ले।

●

मुझे बांधते जब तुम आगे - पीछे
लगता, नहीं मिलेगा अब छुटकारा।
और, गिरा कर रख देते जब नीचे
लगता, उठने का न रहा कुछ चारा।

बंधमुक्त कर देते हो फिर से पर,
उठा गोद में अपनी लेते हो भर,

यों बांहों के झूले में आजीवन
झुला - झुला कर देते स्नेह-सहारा।
मुझे बांधते जब तुम आगे - पीछे
लगता, नहीं मिलेगा अब छुटकारा।

दूर किये देते हो तन्द्रा भय से,
और भगाते भय को जगा अभय दे।
उझक झांक जाते प्राणों में चुपके
जाने कहां छिपे फिरते हो दुबके।

लगता, तुम्हें खो दिया किन्तु कहीं से।
पाता हूं, तुमने फिर मुझे पुकारा।
मुझे बांधते जब तुम आगे - पीछे।
लगता, नहीं मिलेगा अब छुटकारा।

●

[136]

जितने दिन तू नन्हे शिशु-सा
बना रहे बलहीन,
अंतर के अंतःपुर में ही
तब तक रह तल्लीन।

जरा चोट आयी कि गिरेगा
जरा आंच पायी ; कि मरेगा
धूल जरा जो लगी कहीं, बस
सारा बदन मलीन !

अंतर के अंतःपुर में ही
तब तक रह तल्लीन

जिस दिन वह सामर्थ्य मिलेगी
भर जायेंगे प्राण ;
आग भरा वह अमृत उसका
पी लेगा अम्लान।

पड़ना निकल उसी दिन बाहर
रहना लोट धूलि- चंदन पर
तन पर उठा सभी बंधन को
खुद रहना स्वाधीन।

अंतर के अंतःपुर में ही
तब तक रह तल्लीन।

●

[137]

नित्य सत्य होगा कब तुम में
मेरा अंतर ;
सत्य, कहो, आयेगा ऐसा कब
शुभ अवसर।

सहज सत्य के शुचि चरणों पर,
सकल बुद्धि को समुद सौंप धर,
पार भुवन में सीमा का
बंधन जाऊं कर।
कब देखूंगा पूर्ण प्रकाश—
तुम्हारा जी भर।

किये नजर की ओट तुम्हें
अपनी मिथ्या पर मरता ;
भूतों का राजत्व बसा,
जाने क्या तो मैं करता।

यह मेरा मैं धुल कर धुल कर
तुम हो जाये हिलकर मिलकर
जीऊंगा जब अपना लोगे
सत्य समझ कर।

मेरा मरण कहो तुम में कब
जायेगा मर !

●

तुमको अपना स्वामी रहूं बनाये।
मेरा 'मैं' बस इतना ही रह जाये।

हेरूं जिधर, उधर ही तुम्हें निहारूं,
तुमसे मिलूं तुम्हीं पर सब कुछ वारूं,
निशि दिन अनुक्षण तुम पर प्रेम उभारूं

इच्छा कहने को इतनी रह जाये।
तुमको अपना स्वामी रहूं बनाये।

तुम्हें अहं से ढंकूं न अंतर्यामी
इतना ही बाकी हो मेरा स्वामी !
मुझमें पूर्ण तुम्हारी लीलाएं हों,
बांध इसी से जग में रखा मुझको,

बंधा रहूं मैं बाहु- डोर में उन दो
मेरा बंधन इतना ही रह जाये।
तुमको अपना स्वामी रहूं बनाये।

●

[139]

तुमने मेरा प्राण दिया इतना भर,
क्षोभ न होगा, जो अब जाऊं भी मर।

दुख में, सुख में, कितने तो रजनी-दिन
जानें क्या-क्या बजा किया सुर रिनझिन
नाना वेश बना घर में आ पल-छिन
रूप - रूप से लेते रहे हृदय हर।

क्षोभ न होगा, जो अब जाऊं भी मर।

जानूं, तुम्हें न प्राणों में बिठलाया,
तुम्हें न अपना बना चरम धन पाया,

जो पाया, वह नहीं भाग्य कुछ कम तो
हौले तुमने दिया हिया को छू जो

इतना जान गया हूं, हो तुम, तुम हो
यही भरोसा - तरी धरे जाऊं तर।
क्षोभ न होगा, जो अब जाऊं भी मर।
तुमने मेरा प्राण दिया इतना भर।

●

[140]

मानव - जन्म - तरी के मेरे
ऐ तुम खेवनहार ;
सुनते हो ? वह, वहां पार की
मुरली रही पुकार।

तरी तुम्हारी दिन डूबे क्या
तट के घाट लगेगी अब आ
मुंह अंधियारे वहां दीखता
क्या दीपों का हार ?
मुरली रही पुकार।

ऐसा भास रहा है मन में
गंध मधुर इस मंद पवन में
आती सिंधु पार के किसकी
हंसी तिमिर के तार !
मुरली रही पुकार।

आती बार फूल कुछ तोड़े
साथ लिये आया था थोड़े
जो ताजे हैं उनसे डाली
कर लें अब तैयार।

सुनते हो ? वह वहां पार की
मुरली रही पुकार।

●

[141]

मन को, अपनी काया को,
मेट डालना चाह रहा मैं
इस काली छाया को।

उस आगी में जला डालना
उस सागर में मिला डालना
उन चरणों में गला डालना
रौंद डालना माया को।
मन को, अपनी काया को।

जाता जहां, वहीं पर इसको
डट कर बैठ देख-देख तो
लज्जा से गड़ जाता, हर लो
इस गहरी छाया को।
मन को, अपनी काया को।

तुम मेरे इन अनुभावों में
बाधा नहीं कहीं पाओगे
पूर्ण एक तुम दरस दिखाना
हटा- मिटा माया को।
मन को, अपनी काया को।

●

[142]

जाने के दिन कह जाऊं मैं
जिसमें बारंबार ;
जो देखा, जो पाया, उसकी
तुलना से लाचार।

इस आलोक - सिंधु में निर्मल
खिलकर शोभित है जो शतदल
धन्य-धन्य मैं, उसका पीता
रहा सुरभि रस - सार।

जाने के दिन कह जाऊं मैं
जिसमें यही पुकार।

विश्व-रूप का सुघड़ घरौंदा
कितने खेल रचाये,
देखा किया अपूरब छवि को
दोनों नैन बिछाये।

छूना जिन्हें नहीं था संभव
मिले अतनु वे तन में अभिनव

अब जो अंत यहीं करना हो
करें, मुझे स्वीकार !
जाने के दिन कह जाऊं मैं
जिसमें बारंबार।

●

[143]

जिसे नाम से अपने ढंकते हैं हम
तोड़ रहा वह नाम -कैद में है दम।

जितना ही सब भूल-बिसर निशि-वासर
चुना नाम को करते नभ के ऊपर
उतना ही उस नाम - मोह के तम में
अपने सत्य रूप को खोते हैं हम।
तोड़ रहा वह नाम-कंद में है दम।

ढेर लगाये धूल धूल पर धर - धर
ऊंचे उठा नाम को रखता उस पर
छेद कहीं उसमें कोई हो जाये
चैन कहां, लाखों मन को समझाये।

लगें जतन में जितना इस मिथ्या के
अपने को उतना ही खोते हैं हम।

जिसे नाम से अपने ढंकते हैं हम।
तोड़ रहा वह नाम- कैद में है दम।

●

[144]

मेरा नाम मिटा दोगे जिस दिन तुम
बच जाऊंगा सचमुच मैं उस दिन से।
होकर मुक्त रचे सपनों से अपने
मेरे प्रभो, तुम्हीं में नया जनम ले।

तुमने जो लिखा, ढंक कर वह लेखा
खींचूं मैं उस पर स्वनाम की रेखा
कब तक यों जिंदगी चलेगी बोलो
विपदाओं का बोझा ढोते - ढोते।

सब का चुरा सिंगार आपको
वह चाहता सजाना।
सभी सुरों को दबा चाहता
खुद ही महज बजाना।

बला नाम की चुक ही जाये
मुंह में नाम तुम्हारा आये
फिर तो सबसे मिल जाऊंगा
नाम हीन परिचय से।

मेरा नाम मिंटा दोगे जिस दिन तुम
बच जाऊंगा सचमुच मैं उस दिन से।

●

[145]

बाधाएं हैं, उन्हें छुड़ाना चाहूं
पीर पहुंचती उन्हें छुड़ाने में पर ;
मुक्ति मांगने पास तुम्हारे जाऊं
किंतु मांगते लज्जा से जाता मर।

जानूं तुम - सा धन ना दूजा
तुम्हीं श्रेयतम जीवन - पूजा
फिर भी किंचित घर जो संचित
कहां उन्हें कर पाता हूं मैं बाहर।

तुम्हें ढांक कर, रज से अंतर
मरण - अनेक बुलाता
मुझे हृदय से घिन है उनसे
फिर भी वही सुहाता

बाकी इतना फांकी इतना
बहुत विकलता लुकछिप कितना
भला इसी से अपना तुम से
हाय, मांगने में लगता है जो डर।

●

[146]

कहीं मैं न जानूं
दया मांगना जो ;
अनुग्रह से फिर भी
चरण में शरण दो।

खिलौने बनाये
रहूं सब भुलाये
कि पूजूं सुखों को
सुमन- फल चढ़ाये
न रज के घरौंदे
में रखो घृणा से
लगा वज्र जी में
दया कर जगा दो।

पड़ा सत्य बेकस
द्विधा से गया घिर,
उसे कौन खोले
तुम्हारे सिवा फिर।
मरण को हरण कर
झरे सोम निर्झर
अतल दीनता की
उठे शून्यता भर।

व्यथा में पतन की
उठे चेतना - सी
विरोधों में वाणी
तुम्हारी मुखर हो।

●

[147]

पूजा जनमें में
न पूरी हुई जो
समझता हूं, वे भी
न यों ही गयी खो।

कली जो नहीं खिल
गयी धूल में मिल
नदी - स्रोत मरु में
विवश जो गये सो।

समझता हूं, वे भी
न यों ही गये खो।
कि पाछे रहीं जो
पड़ी जिंदगी से

समझता हूं, सचमुच
अकारथ नहीं वे।
अनागत रहे जो
अनाहत रहे जो

विपंची में तेरी
सभी बज रहे तो !
समझता हूं, वे भी
न यों ही गये खो।

●

[148]

केवल एक प्रणति में, स्वामी,
एक प्रणति ही में बस,
तेरी दुनिया में लुट जाये
यह मेरा तन बरबस।

जैसे सघन श्याम सावन घन
निविड़ भार रस नम्र विनत मन
केवल एक प्रणति में, स्वामी,
एक प्रणति ही में बस,
तेरे द्वार बरस कर बिखरे
मेरे मन का सरबस।

विविध सुखों की आकुल धारा
खोकर, होकर मन मतवारा
केवल एक प्रणति में, स्वामी,
एक प्रणति ही में बस,
सो जाएं सब गीत मौन के
महासिंधु में बेबस।

हंस मानसरगामी जैसे
क्या दिन और रात क्या, वैसे
केवल एक प्रणति में, स्वामी,
एक प्रणति ही में बस
महामरण के पार निरंतर
उड़ें प्राण ये परवश।

●

[149]

चिर दिन जो रह गया मात्र
आभासों में जीवन में,
फूट नहीं पाया प्रकाश में
झलमल प्रात - किरण में,

जीवन के इस शेष दान में
जीवन के इस शेष गान में
देव, वही धन आज धरूंगा
सम्मुख कमल - चरण में।

फूट नहीं पाया प्रकाश में
जो नव प्रात - किरण में।

वाणी उसे नहीं कर पायी
बांध शब्द में पूरा ;
साध न पाया गीत उसे
सुर में, रह गया अधूरा।

किस एकांत विजन में नीरव
मोहन रूप छिपा था अभिनव
आ न सका था, मीत, आज तक
कैसे निखिल नयन में !

फूट नहीं पाया प्रकाश में
वह तो प्रात - किरण में।

भटका किया उसे ले - लेकर
देश-देश मैं मारा,
जोड़-तोड़ जो भी जीवन में
उस पर ही तो सारा।

सभी भाव में, सभी काज में
मेरे अपनों के समाज में
फिर भी रहा अकेला वह
कैसे तो स्वप्न, शयन में।

फूट नहीं पाया प्रकाश में
वह तो प्रात - किरण में।

बहुत बार बहुतों ने आकर
मांगा मुझसे उसको,
दरवाज़े से लौट गये पर
विफल मनोरथ हो - हो।

और नहीं कोई समझेगा
तुमसे मेरा परिचय होगा।
इसी आस पर रहा आज तक
अपने शून्य गगन में।

फूटा नहीं जोत में तो वह
झलमल प्रात - किरण में।

●

[150]

सहा न जाता अब तो तुमसे
यह विरोध नित - नित का ;
बढ़ता जाता बोझ देन का
दिन - दिन कितना क्या - क्या।

सभी सभा-सम्मत बन-ठन कर
तुम्हें प्रणाम गये कर आकर
मान बचे ना, मैं मैला
पहने हूं छिपता फिरता।

अपना दुख क्या करूं निवेदन
गूंगा जो हो गया हाय, मन
तुम से अपनी कोई भी तो
बात नहीं अब कहता।

अब तो उसे नहीं लौटाओ
अपमानों से परे उठाओ
जनम - जनम का क्रीत उसे
कर लो निज ललित चरण का।

●

पकड़ाई दूं प्रेम - करों में
हूं यह आस लगाये ;
देर बहुत हो गयी, सत्य है
दोष बहुत बन आये।

विधि-विधान का बंधन-धागा
चला बांधने, बस, मैं भागा
इसका मिले दंड जो लूंगा
खुशी - खुशी सिर नाये।

पकड़ाई दूं प्रेम - करों में
हूं यह आस लगाये।

सब करते हैं निंदा मेरी
निंदा, झूठ नहीं है,
सब निंदा माथे रख लूंगा
सबके नीचे रह मैं।

डूब चली है अब तो वेला
टूटा क्रय-विक्रय का मेला
मुझे बुलाने जो आये थे
लौट गये रिसियाये।

पकड़ाई दूं प्रेग - करों में
हूं यह आस लगाये।

●

[152]

और-और जो लोग जगत में
करते मुझको प्यार
कठिन बंध में बांध मुझे
रखते मुझ पर अधिकार।

सबसे बढ़कर प्रेम तुम्हारा
जभी अलग उसकी है धारा
नहीं बांधते, लुक-छिप रहते
किंकर को परिहार।

औरों को भूलूं शायद, सो
रहते हैं, वे घेरे
दिन पर दिन बीते जाते पर
दर्शन कहां तुम्हारे !

याद तुम्हारी करूं न करूं
जो चाहे सो लेकर विचरूं
खुशी तुम्हारी, मेरी
खुशियों का पथ रही निहार।

[153]

कब भेजोगे अपने प्रेम -दूत को. मेरे पास ?
तब मेरे मन के द्वन्द्वों का होगा सहज विनाश।

उसे छोड़ जो और दूसरे घर पर मेरे आते
वे मुझ पर शासन करते हैं, धमकाते डरवाते।
यह दुरंत मन द्वार लगाये दुबका रहता कोने
हार न माने, बार-बार लौटाता उन्हें निराश।
कब भेजोगे अपने प्रेम-दूत को मेरे पास ?

प्रेम-दूत जो आवे, सारी रोक आप ही छूटे
जितने भी बंधन हैं, सारे अनायास ही टूटें
कौन इसे फिर रोक रख सकेगा घर के घेरे में
उसके आवाहन पर कोई कैसे रहे उदासं ?
कब भेजोगे अपने प्रेम-दूत को मेरे पास ?

प्रेम-दूत जब भी आता है, आता निपट अकेले
फूलों की मालिका मृदुल उसकी ग्रीवा में डोले
खींच समीप मुझे अपनी उस माला में बांधेगा
वाक्‌विवश हो हृदय रहेगा खींच तृप्ति की सांस ?
कब भेजोगे अपने प्रेम- दूत को मेरे पास ?

●

मुझसे गीत गवाये तुमने
कितने छल से
खिला - खिला सुख - खेल
रुला कर आंसू - जल से।

हाथ लगे फिर हाथ न आये
पास पहुंच कर छिटक पराये
सतत व्यथा से भर-भर लाये
अंतस्तल हे !

गीत गवाये ऐसे जानें
कितने छल से।

कितने तीव्र तार से अपनी
वीण सजाते,
सहस छेद कर जीवन की
बांसुरी बजाते।

उस गहरी सुर - लीला में जो
मेरा जीवन गया लीन हो
रखो इसे मौन कर अब तो
पदतल में हे !

गीत गवाये आजीवन
कितने तो छल से !

●

[155]

जी में होता यहीं शेष है
किंतु. कहां का शेष ;
तेरी राजसभा से फिर जो
आ जाता आदेश।

नये गीत से, नये राग से
नये सिरे से प्राण· जागते
जाऊं कहां लीक धर सुर की
ज्ञात नहीं उद्देश।
तेरी राजसभा से फिर जो आ जाता ओदश।

संध्या में स्वर्णिम आभा से
मिला - मिला कर तान
शेष पूरबी में कर लेता
जब में अपना गान।

गहन रात के गहरे स्वर से
जीवन भर जाता है फिर से
फिर तो नयनों में रह जाता
नहीं नींद का लेश।
जी में होता यहीं शेष है किंतु कहां का शेष !

●

[156]

छिपा शेष ही में अशेष है
यही बात अंतर में
आज प्रतिक्षण जाग रही
गीतों के शेष प्रहर में।

थम कर हुई मूर्च्छना थिर-सी
नहीं चाहती थमना फिर भी
बजती जाती बिना प्रयोजन
वीणा मौन - लहर में।
छिपा शेष ही में अशेष है यही बात अंतर में।

पड़ती है जब चोट तार पर
सुर झंकृत हो आता
सबसे बड़ा गीत जो है, वह
बहुत दूर रह जाता

जब आलाप सभी थम जाता
उतर शांत वीणा पर आता
जैसे बजती है दिन डूबे
संध्या गहरें स्वर में।
छिपा शेष ही में अशेष है यही बात अंतर में।

CL / 14